दंसणमूलो धम्मो

# आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

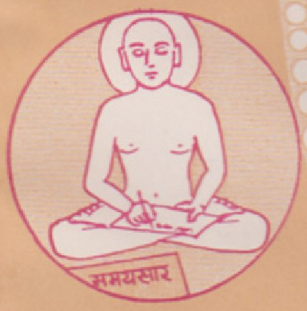

पू० स्वामीजी के ८६वें जन्म-दिवस पर
जिसने धर्म साधना ही में,
लगा दिया है अपना तन-मन।
हे युगपुरुष! तुम्हें तन-मन से,
करता हूँ शत-शत अभिनन्दन॥
— 'एकाकी'

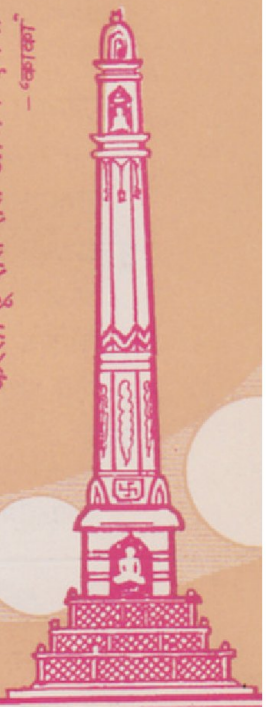

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

# आत्मधर्म [ ३९५ ]

[ हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक ]

संपादक :
**डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रबंध संपादक :
**अखिल बंसल**

कार्यालय :
**श्री टोडरमल स्मारक भवन**
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

**क्या**

१ जब आतम अनुभव आवे
२ दूज का चाँद....
३ संपादकीय : उत्तम त्याग
४ तं सुद्धणयं वियाणीहि
[समयसार प्रवचन]
५ स्वभावज्ञान और विभावज्ञान
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

"कोई स्वीकार करे या न करे, किंतु यदि कभी किसी तटस्थ इतिहासज्ञ ने जैन समाज के इन तीन दशकों का इतिहास लिखा तो वह इस युग के इस काल को 'कानजी युग' ही स्वीकार करेगा।"

[ जैन संदेश, २९ जुलाई १९७६ से साभार ]

आ त्म ध र्म

*शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।*
*समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥*

वर्ष : ३३ [३९५] अंक : ११

## जब आतम अनुभव आवे।

जब आतम अनुभव आवे तब और कछु न सुहावै॥ टेक॥
जिन आज्ञा अनुसार प्रथम ही तत्त्व प्रतीति अनावै।
वरनादिक रागादिक ते निज चिह्न भिन्न फिर ध्यावै॥ जब०॥
मतिज्ञान फरसादि विषय तजि आतम सन्मुख धावै।
नय-प्रमाण-निक्षेप सकल श्रुतज्ञान विकल्प नसावै॥ जब०॥
चिदहं शुद्धोहं इत्यादिक आप मांहि बुध आवै।
तन पै बज्रपात गिरते हू नेकु न चित्त डुलावै॥ जब०॥
स्वसंवेद आनंद बढै अति वचन कह्यो नहिं जावै।
देखन-जानन-चरण तीन विच इक स्वरूप ठहरावै॥ जब०॥
चित् कर्ता चित् कर्म भाव चित् परनति क्रिया कहावै।
साधक-साध्य ध्यान-ध्येयादिक भेद कछु न दिखावै॥ जब०॥
आत्मप्रदेश अदृष्ट तदपि रस स्वाद प्रगट दरसावै।
ज्यों मिश्री दीसत न अंध को सपरस मिष्ट चखावै॥ जब०॥
जिन जीवन के संसृत पारावार पार निकटावै।
'भागचंद' ते सार अमोलक परम रतन वर पावै॥ जब०॥

# दूज का चाँद और उसकी ओर लगी सहस्त्रों आँखें

शुक्ल पक्ष की दूज का नवोदित चाँद क्रमशः वृद्धिंगत होता हुआ पूर्णमासी तक पहुँचते-पहुँचते पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का जन्म भी ८८ वर्ष पूर्व सौराष्ट्र (गुजरात) के एक साधारण ग्राम उमराला में वैशाख शुक्ल दोज के दिन ही हुआ था, अक्षय तृतीया के ठीक एक दिन पहिले।

दूज के चाँद के समान वे भी पूर्णता के लक्ष्य से निरंतर पूर्णता की ओर बढ़ रहे हैं, और अध्यात्मप्रेमी मुमुक्षुजनों की हजारों आँखें उनकी ओर लग रही हैं।

उनका ८९वाँ मंगल-जन्मदिवस वैसे तो सारे भारतवर्ष में सोत्साह मनाया जा रहा है, किंतु घाटकोपर बंबई में उनकी ही उपस्थिति में दिनांक ९-५-७८ मंगलवार को विविध कार्यक्रमों के साथ विशाल रूप में अत्यंत उत्साह से मनाया जा रहा है। पूज्य स्वामीजी १५ दिन पूर्व से ही वहाँ पहुँच चुके हैं और सुसज्जित विशाल पंडाल में दश हजार से भी अधिक जनता उनके प्रवचनों का लाभ प्रतिदिन दोनों समय ले रही है।

इस उम्र में भी पूर्णतः सजग, अध्ययन-मनन-चिंतन और आत्मानुभवन में मग्न, प्रतिदिन दोनों समय १-१ घंटे प्रवचन एवं रात्रि-चर्चा के माध्यम से नियमित अमृतवर्षा करनेवाले, अद्‌भुत व्यक्तित्व के धनी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के ८९वें जन्मदिवस पर मैं मंगलकामना करता हूँ कि वे दीर्घायु हों एवं हम सबको निरंतर अध्यात्मरस का पान कराते रहें।

**—डॉ. हुकमचंद भरिल्ल**

# सम्पादकीय

## उत्तम त्याग

## एक विश्लेषण

*[गतांक से आगे]*

कुछ वस्तुयें ऐसी हैं जिनका त्याग होता है, दान नहीं। कुछ ऐसी हैं जिनका दान होता है, त्याग नहीं। कुछ ऐसी भी है जिनका दान भी होता है और त्याग भी। जैसे—राग-द्वेष, माँ-बाप, स्त्री-पुत्रादि को छोड़ा जा सकता है, उनका दान नहीं दिया जा सकता; ज्ञान और अभय का दान दिया जा सकता है, पर वे त्यागे नहीं जाते; तथा औषधि, आहार, रुपया, पैसा आदि का त्याग भी हो सकता है और दान भी दिया जा सकता है।

शास्त्र में कहीं-कहीं त्याग और दान शब्दों का एक अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। इस कारण भी इन दोनों के एकार्थवाची होने के भ्रम फैलने में बहुत कुछ सहायता मिली है। शास्त्रों में जहाँ इसप्रकार के प्रयोग हैं, वहाँ वे इस अर्थ में हैं—निश्चयदान अर्थात् त्याग और व्यवहारत्याग अर्थात् दान। जब वे दान कहते हैं तो उसका अर्थ सिर्फ दान होता है और जब निश्चयदान कहते हैं तो उसका अर्थ त्यागधर्म होता है। इसीप्रकार जब वे त्याग कहते हैं तो इसका अर्थ त्यागधर्म होता है और जब व्यवहारत्याग कहते हैं तो उसका अर्थ दान होता है।

इसप्रकार का प्रयोग दशलक्षण पूजन में हुआ है। उसमें कहा है—

**'उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषधि शास्त्र अभय आहारा।**
**निश्चय राग-द्वेष निरवारे, ज्ञाता दोनों दान संभारे॥'**

यहाँ ऊपर की पंक्ति में जहाँ उत्तम त्यागधर्म को जगत में सारभूत बताया गया है वहीं साथ में उसके चार भेद भी गिना दिये जो कि वस्तुतः चार प्रकार के दान हैं और जिनकी विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

अब प्रश्न उठता है कि ये चार दान क्या त्यागधर्म के भेद हैं? पर नीचे की पंक्ति पढ़ते ही सारी बात स्पष्ट हो जाती है। नीचे की पंक्ति में साफ-साफ लिखा है कि निश्चयत्याग तो

राग-द्वेष का अभाव करना है। यद्यपि ऊपर की पंक्ति में व्यवहार शब्द का प्रयोग नहीं है, तथापि नीचे की पंक्ति में निश्चय का प्रयोग होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर जो बात है, वह व्यवहारत्याग अर्थात् दान की है। आगे और भी स्पष्ट है कि 'ज्ञाता दोनों दान संभारे' अर्थात् ज्ञानी आत्मा निश्चय और व्यवहार दोनों को संभालता है। 'दोनों दान' शब्द सब कुछ स्पष्ट कर देता है।

पहली पंक्ति पढ़ते ही ऐसा लगता है कि कवि बात तो त्यागधर्म की कर रहा है और भेद दान के गिना दिये हैं। पर ऐसा नहीं कि कवि को यह बात ध्यान में न हो। क्योंकि अगली पंक्ति में ही सब कुछ स्पष्ट हो जाता है कि कवि वीतराग भावरूप त्यागधर्म को निश्चयदान या निश्चयत्याग एवं आहारादि के देने को व्यवहारदान या व्यवहारत्याग शब्द से अभिहित कर रहा है।

''धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग-विरोध को''

पूजन की इस पंक्ति में शास्त्र और अभय के साथ 'दिवैया' शब्द का प्रयोग एवं राग-विरोध के साथ 'त्याग' शब्द का प्रयोग यह बताता है कि शास्त्र और अभय का दान होता है और राग-द्वेष का त्याग होता है। तथा 'धनि साधु' कह कर यह स्पष्ट कर दिया है कि ये साधु के धर्म हैं। आहार और औषधि को जानबूझकर छोड़ दिया गया है, क्योंकि वे साधु द्वारा देना संभव नहीं है।

इसीप्रकार के प्रयोग अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं। अतः शास्त्रों के अर्थ समझने में बहुत सावधानी रखना जरूरी है, अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि यदि आहारादि देने को ही त्यागधर्म मानेंगे तो फिर एक समस्या और खड़ी हो जावेगी। वह यह कि यहाँ जो उत्तम क्षमादि धर्मों का वर्णन चल रहा है, वह मुख्यतः मुनियों की अपेक्षा किया गया है, क्योंकि तत्त्वार्थसूत्र में दशधर्म की चर्चा गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र के साथ की गयी है। ये सब मुनिधर्म के ही रूप हैं।

यदि आहारादि देने का नाम त्यागधर्म है तो फिर मुनिराज तो आहार लेते हैं, देते नहीं; देते तो श्रावक हैं। अतः फिर त्यागधर्म मुनिराजों की अपेक्षा श्रावकों को विशेष मानना होगा जो

कि संभव नहीं है। अत: वस्तुत: तो राग-द्वेषादि विकारों के त्याग का ही नाम उत्तम त्यागधर्म है। मुनियों के अनर्गल आहारादि के त्यागरूप त्यागधर्म तो हो सकता है, आहारादि के देनेरूप नहीं।

हम त्याग का तो सही स्वरूप समझते ही नहीं, दान का भी सही स्वरूप नहीं समझते। इस अर्थप्रधान युग में पैसा ही सब कुछ हो गया है। जब भी दान की बात आवेगी, दानवीरों की चर्चा होगी, तो पैसेवालों की ओर ही देखा जावेगा। आज के दानवीर सेठों में ही दिखाई देंगे। उन्हें ही दानवीर की उपाधियाँ दी जाती हैं। किसी आहार, औषधि या ज्ञान देनेवाले को कभी 'दानवीर' बनाया गया हो तो बतायें? एक भी ज्ञानी पंडित या वैद्य समाज में 'दानवीर' की उपाधि से विभूषित दिखायी नहीं देता। जितने दानवीर होंगे वे सेठों में कही मिलेंगे। वणिक वर्ग इससे आगे सोच भी क्या सकता है? इसने एक लाख दिये, उसने पाँच लाख दिये—ऐसी ही चर्चा सर्वत्र होती देखी जाती है।

पर मैं सोचता हूँ चार दानों में तो पैसादान, रुपयादान नाम का कोई दान है नहीं; उनमें तो आहार, औषधि, ज्ञान और अभयदान हैं; यह पैसादान कहाँ से आ गया?

दान निर्लोभियों की क्रिया थी, जिसे यश और पैसे के लोभियों ने विकृत कर दिया है।

'हमारी संस्था को पैसे दो तो चारों दानों का लाभ मिलेगा'—ऐसी बातें करते प्रचारक आज सर्वत्र देखे जा सकते हैं। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहेंगे—'छात्रावास में लड़के रहते हैं, वे वहीं भोजन करते हैं, अत: आहारदान हो गया। उन्हें कानून या डॉक्टरी या और भी इसीप्रकार की लौकिक शिक्षा देते हैं, अत: ज्ञानदान हो गया। वे बीमार हो जाते हैं तो उनका अस्पताल में इलाज कराते हैं, वह औषधिदान और अखाड़े में व्यायाम करते हैं, वह अभयदान हो गया।'

मैं पूछता हूँ क्या अपात्रों को दिया गया भोजन आहारदान है? कहा भी है—

**'मिथ्यात्वग्रस्तचित्तोसु चारित्राभासभागिषु।**
**दोषायैव भवेद्दानं पय:पानमिवाहिषु॥'**

चारित्राभास को धारण करनेवाले मिथ्यादृष्टियों को दान देना सर्प को दूध पिलाने के समान केवल अशुभ के लिये ही होता है।

शास्त्रों में तीन प्रकार के पात्र कहे हैं, वे सब चौथे गुणस्थान से ऊपरवाले ही होते हैं। तथा लौकिकशिक्षा ज्ञान है या मिथ्याज्ञान? इसीप्रकार अभक्ष्य औषधियों का देना ही औषधिदान है क्या? जिस अभक्ष्य औषधि के सेवन में पाप माना गया है, उसे देने में दान-पुण्य या त्यागधर्म कैसे होगा?

पर उन्हें इससे क्या? उन्हें तो पैसा चाहिये और देनेवालों को भी क्या? उनका नाम पाटिये पर लिखा जाना चाहिये। इसप्रकार देनेवाले यश के लोभी और लेनेवाले पैसे के लोभी—इन लोभियों ने लोभ के अभाव में होनेवाले दान को भी विकृत कर दिया है।

त्यागधर्म का यह दुर्भाग्य ही समझो कि उसकी चर्चा के लिये वर्ष में महापर्व दशलक्षण के दिनों में एक दिन मिलता है, उसे यह दान खा जाता है। दान क्या खा जाता है, दान के नाम पर होनेवाला चंदा खा जाता है। यह दिन चंदा करने में चला जाता है, त्यागधर्म के सच्चे स्वरूप की परिभाषा भी स्पष्ट नहीं हो पाती।

समाज में त्यागधर्म के सच्चे स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाला विद्वान बड़ा पंडित नहीं; बल्कि वह पेशेवर पंडित बड़ा पंडित माना जाता है जो अधिक से अधिक चंदा करा सके। यह उस देश का, उस समाज का दुर्भाग्य ही समझो जिस देश व समाज में पंडित और साधुओं के बड़प्पन का नाप ज्ञान और संयम से न होकर दान के नाम पर पैसा इकट्ठा करने की क्षमता के आधार पर होता है।

इस वृत्ति के कारण समाज और धर्म का सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि पंडितों और साधुओं का ध्यान ज्ञान और संयम से हटकर चंदे पर केंद्रित हो गया है। जहाँ देखो धर्म के नाम पर विशेषकर त्यागधर्म के नाम पर, दान के नाम पर, चंदा इकट्ठा करने में ही इनकी शक्ति खर्च हो रही है, ज्ञान और ध्यान एक ओर रह गये हैं।

यही कारण है कि उत्तम त्यागधर्म के दिन हम त्याग की चर्चा न करके दान के गीत गाने लगते हैं। दान के भी कहाँ दानियों के गीत गाने लगते हैं। दानियों के गीत भी कहाँ—एक प्रकार से दानियों के नाम पर यश के लोभियों के गीत ही नहीं गाते; चापलूसी तक करने लगते हैं। यह सब बड़ा अटपटा लगता है पर क्या किया जा सकता है—सिवाय इसके कि स्वयं बचें और त्यागधर्म का सही स्वरूप स्पष्ट करें। जिनका सद्भाग्य होगा वे समझेंगे, बाकी का जो होगा सो होगा।

यद्यपि चार दानों में पैसादान नहीं है तथापि उसका भी दान हो सकता है, होता भी है। पैसे का दान को दान ही नहीं मानने की बात नहीं कही जा रही है, पर वह ही सब कुछ नहीं है—मात्र यह स्पष्ट किया है।

दान देनेवाले से लेनेवाला बड़ा होता है। पर यह बात तब है जब देनेवाला योग्य दातार और लेनेवाला योग्य पात्र हो। मुनिराज आहारदान लेते हैं और गृहस्थ आहारदान देते हैं। मुनिराज त्यागी हैं, त्यागधर्म के धनी हैं; गृहस्थ दानी हैं, अतः पुण्य का भागी है। धर्मतीर्थ के प्रवर्तक बाह्याभ्यांतर परिग्रहों के त्यागी भगवान आदिनाथ हुए और उन्हें ही मुनि अवस्था में आहार देनेवाले राजा श्रेयांस दानतीर्थ के प्रवर्तक माने गये हैं।

गृहस्थ नौ बार नमकर मुनिराज को आहारदान देता है, पर आज दान के नाम पर भीख माँगनेवालों ने दातारों की चापलूसी करके उन्हें दानी से मानी बना दिया है। देनेवाले का हाथ ऊँचा रहता है आदि चापलूसी करते लोग कहीं भी देखे जा सकते हैं। आकाश के प्रदेशों में ऊँचा रहने से कोई ऊँचा नहीं हो जाता। मक्खी राजा के मस्तक पर भी बैठ जाती है तो क्या वह महाराजा हो गयी? गृहस्थों से मुनिराज सदा ही ऊँचे हैं। दातार भी यह मानता है, पर इन चापलूसों को कौन समझाये?

दानी से त्यागी सदा ही महान होता है; क्योंकि त्याग धर्म है, और दान पुण्य है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि आहारदान में तो ठीक, पर ज्ञानदान में यह बात कैसे संभवित होगी?

इसप्रकार कि ज्ञानदान अर्थात् समझाना। समझाने का भाव भी शुभभाव होने से पुण्यबंध का कारण है। अतः समझानेवाले को पुण्य का लाभ अर्थात् पुण्य का बंध ही होता है जबकि समझनेवाले को ज्ञानलाभ प्राप्त होता है। लाभ की दृष्टि से ज्ञानदान लेनेवाला फायदे में रहा।

यहाँ कोई यह कह सकता है कि आप तो व्यर्थ ही पैसों का दान देने और लेनेवालों की आलोचना करते हैं। यदि ऐसा न हो तो संस्थायें चलें कैसे?

अरे भाई! हम उनकी बुराई नहीं करते। किंतु दान का सही स्वरूप न समझने के कारण दान देकर भी जो दान का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त नहीं कर पाते—उनके हित को लक्ष्य में रखकर उसका सही स्वरूप बताते हैं, जिसे जानकर वे वास्तविक लाभ उठा सकें। रही बात संस्थाओं

की सो आप उनकी बिल्कुल चिंता न करें। यदि जनता दान का सही स्वरूप समझ लेगी तो ये धार्मिक संस्थायें बंद नहीं होगी, दुगुनी-चौगुनी चलेंगी। दान भी मान के लिये अभी जितना निकालते हैं, उससे दुगना-चौगुना निकलेगा। हाँ धर्म के नाम पर धंधा करनेवाली नकली संस्थायें अवश्य बंद हो जावेंगी। सो उन्हें तो समाप्त होनी ही चाहिये।

संक्लेश परिणामों से दिया गया चंदा दान नहीं हो सकता। दान तो उत्साहपूर्वक विशुद्धभावों से दिया जाता है। दान के फल का निरूपण करते हुए कहा गया है—

**दान देय मन हरष विशेषे, इस भव जस परभव सुख देखे।**

**( कविवर द्यानतराय : सोलहकारण पूजा, जयमाला )**

यहाँ दान का फल इस भव में यश एवं आगामी भव में सुख की प्राप्ति लिखा है, मोक्ष की प्राप्ति नहीं लिखा। तथा दान देने के साथ 'विशेष हर्ष' की शर्त भी लगायी गयी है। उत्साहपूर्वक विशेष प्रसन्नता के साथ दिया गया दान ही फलदायी होता है, किसी के दबाव या यशादि के लोभ से दिया गया दान वांछित फल नहीं देता।

योग्य पात्र को देखकर दातार को ऐसी प्रसन्नता होनी चाहिये जैसी कि ग्राहक को देखकर दुकानदार को होती है। संक्लेश परिणामपूर्वक अनुत्साह से दिये गये दान से धर्म तो बहुत दूर, पुण्य भी नहीं होता।

बिना माँगे दिया गया दान सर्वोत्कृष्ट है, माँगने पर दिया गया दान भी न देने से कुछ ठीक है। पर जोर-जबरदस्ती से अनुत्साहपूर्वक देना तो दान ही नहीं है। कहा भी है—

बिन मांगे दे दूध बराबर, मांगे दे सो पानी।
वह देना है खून बराबर, जामें खींचातानी॥

खींचातानी के बाद देनेवाले को इस लोक में यश भी नहीं मिलता और पुण्य का बंध नहीं होने से परभव में सुख मिलने का भी सवाल नहीं उठता। नहीं देने पर तो अपयश होता ही है, खींचतान के बाद दे देने पर भी लोग उसकी मजाक ही उड़ाते हैं। कहते हैं भाई! तुमने पाड़ा दुह लिया है। हम तो समझते थे वे कुछ नहीं देंगे, पर तुम ले ही आये।

यशादि के लोभ के बिना धर्मप्रभावना, तत्त्वप्रचार आदि के लिये उत्साहपूर्वक दिया गया रुपया-पैसा आदि संपत्ति का दान, मुनिराज आदि योग्य पात्रों को दिया गया आहारादि का

दान, आत्मार्थियों को दिया गया आत्महितकारी तत्त्वोपदेश एवं शास्त्रादि लिखना-लिखाना, घर-घर तक पहुँचाना आदि ज्ञानदान शुभभावरूप होने से पुण्यबंध का कारण है।

ज्ञानी जीवों को अपनी शक्ति एवं भूमिकानुसार उक्त दानों को देने का भाव अवश्य आता है, वे दान देते भी खूब हैं; किंतु उसे त्यागधर्म नहीं मानते, नहीं जानते। त्यागधर्म भी ज्ञानी श्रावकों के भूमिकानुसार अवश्य होता है और वे उसे ही वास्तविक त्यागधर्म मानते-जानते हैं।

यशादि के लोभ से दान देनेवालों की आलोचना सुनकर दान नहीं देनेवालों को प्रसन्न होने की आवश्यकता नहीं है। नहीं देने से तो देना अच्छा ही है, मान के लिये ही सही, उनके देने से उन्हें भले ही उसका लाभ न मिले, पर तत्त्वप्रचार आदि का कार्य तो होता ही है। यह बात अलग है कि वह वास्तविक दान नहीं है। अतः दान का सही स्वरूप समझकर हमें अपनी शक्ति और योग्यतानुसार दान तो अवश्य ही करना चाहिये।

दान देने की प्रेरणा देते हुए आचार्य पद्मनंदी ने लिखा है—

**सत्पात्रेषु यथाशक्ति, दानं देयं गृहस्थितैः।**
**दानहीना भवेत्तेषां, निष्फलैव गृहस्थता॥३१॥**

**( पद्मनंदिपंचविंशतिकाः उपासकसंस्कार, श्लोक-३१ )**

गृहस्थ श्रावकों को शक्ति के अनुसार उत्तम पात्रों के लिये दान अवश्य देना चाहिये, क्योंकि दान के बिना उनका गृहस्थाश्रम निष्फल ही होता है।

खुरचन प्राप्त होने पर कौआ भी उसे अकेले नहीं खाता, बल्कि अन्य साथियों को बुलाकर खाता है। अतः यदि प्राप्त धन का उपयोग धार्मिक और सामाजिक कार्यों में न करके अकेले अपने भोग में ही लगायेगा तो यह मानव कौआ से भी गया बीता माना जायेगा।

यहाँ जो बात कही जा रही है, वह दान की हीनता या निषेधरूप नहीं है। किंतु त्याग और दान में क्या अंतर है—यह स्पष्ट किया जा रहा है।

दान की यह आवश्यक शर्त है कि जो देना है, जितना देना है, वह कम से कम उतना, देनेवाले के पास अवश्य होना चाहिये; अन्यथा देगा क्या और कहाँ से देगा ? पर त्याग में ऐसा नहीं है। जो वस्तु हमारे पास नहीं है, उसको भी त्यागा जा सकता है। उसे मैं प्राप्त करने का यत्न नहीं करूँगा, सहज में प्राप्त हो जाने पर भी नहीं लूँगा—इसप्रकार का त्याग किया जाता है। वस्तुतः यह उस वस्तु का त्याग नहीं, उसके प्रति होनेवाले या संभवित राग का त्याग है।

लखपति अधिक से अधिक लाख का ही दान दे सकता है, पर त्याग तो तीन लोक की संपत्ति का भी हो सकता है। परिग्रह-परिमाणव्रत में एक निश्चित सीमा तक परिग्रह रखकर और समस्त परिग्रह का त्याग किया जाता है। वह सीमा-अपने पास है उससे भी बड़ी हो सकती है। जैसे—जिसके पास दस हजार का परिग्रह है, वह एक लाख का भी परिग्रहपरिमाण ले सकता है। ऐसा होने पर भी वह त्यागी है; पर अपने पास रखने की कोई सीमा निर्धारित किये बिना करोड़ों का भी दान दे तो भी त्यागी नहीं माना जायेगा।

दान कमाई पर प्रतिबंध नहीं लगाता, आप चाहे जितना कमाओ; पर त्याग में भले ही हम कुछ न दें, कुछ न छोड़ें; पर वह कमाई को सीमित करता है, उस पर प्रतिबंध लगाता है।

दान में यह देखा जाता है कि कितना दिया, यह नहीं देखा जाता कि उसने अपने पास कितना रखा है; जबकि त्याग में यह नहीं देखा जाता कि कितना दिया है या छोड़ा है, बल्कि यह देखा जाता है कि उसने अपने पास कितना रखा या रखने का निश्चय किया है, बाकी सबका त्याग ही है। यदि त्याग में कितना छोड़ा देखा जाता होता तो फिर चक्रवर्ती सबसे बड़ा त्यागी माना जाता; किंतु नग्नदिगंबर भावलिंगी संत अपनी वीतरागपरिणतिरूप त्याग से छोटे-बड़े माने जाते हैं—इससे नहीं कि वे कितना धन, राज-पाट, स्त्री-पुत्रादि छोड़के आये हैं। यदि ऐसा होता तो फिर भरत चक्रवर्ती बड़े त्यागी और भगवान महावीर छोटे त्यागी माने जाते। क्योंकि भरतादि चक्रवर्तियों ने तो छ्यानवै हजार पत्नियों और छह खंड की विभूति छोड़ी थी। महावीर के तो पत्नी थी ही नहीं, छहखंड का राज भी नहीं था, वे क्या छोड़ते ? लोक में भी बालब्रह्मचारी को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

दान में इतना देकर कितना रखा—इसका विचार नहीं किया जाता; पर त्याग में कितना रखा देखा जाता है, कितना छोड़ा या दिया—यह नहीं।

दान यदि देने का नाम है तो त्याग नहीं लेने को कहते हैं। देनेवाले से, नहीं लेनेवाला बड़ा होता है। क्योंकि देनेवाला दानी है और नहीं लेनेवाला त्यागी।

जिसके पास सबकुछ होता है, उसे राजा कहते हैं और जिसके पास कुछ नहीं होता अर्थात् जो अपने पास कुछ भी नहीं रखता, जिसे कुछ भी नहीं चाहिये उसे महाराजा कहा जाता है। कहा भी है—

चाह गई चिंता गई, मनुआ बे-परवाह।
जिन्हें कुछ नहीं चाहिए, ते नर शाहंशाह॥

लोक में दानियों से अधिक सन्मान त्यागियों का होता है और वह उचित भी है—क्योंकि त्याग शुद्धभाव है और दान शुभभाव; त्याग धर्म है और दान पुण्य।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि लोग में त्याग जैसे पवित्र शब्द के साथ मल-मूत्र जैसे अपवित्र शब्दों को जोड़ दिया जाता है—जैसे मलत्याग, मूत्रत्याग। जबकि—त्याग की अपेक्षा हीन-दान के साथ ज्ञान जैसा पवित्र शब्द जोड़ा गया है—जैसे ज्ञानदान।

भाई! कोई शब्द पवित्र या अपवित्र नहीं होता। शब्द तो वस्तु के वाचक हैं। रही वस्तु की बात सो भाई! त्याग तो अपवित्र वस्तु का ही किया जाता है। राग-द्वेष-मोह भाव भी तो अपवित्र हैं, उनके साथ भी त्याग शब्द लगता है। तथा दान तो अच्छी वस्तु का ही दिया जाता है।

यदि आज के संदर्भ में गहराई से विचार करें तो सच्चा त्याग तो लोग मल-मूत्र का ही करते हैं। क्योंकि जिस वस्तु को त्यागा फिर उसके संबंध में विकल्प भी नहीं उठना चाहिये कि उसका क्या हुआ अथवा क्या होगा? यदि विकल्प उठे तो उसका त्याग कहाँ हुआ? मल-मूत्र के त्याग के बाद लोगों को विकल्प भी नहीं उठता कि उसका क्या हुआ, उसे कूकर ने खाया या सूकर ने?

इन्हीं के समान जब उन समस्त वस्तुओं के प्रति हमारा उपेक्षा भाव हो जिनका हम त्याग करना चाहते हैं या करते हैं, तभी वह सच्चा त्याग होगा।

त्याग एक ऐसा धर्म है जिसे प्राप्त कर यह आत्मा अकिंचन अर्थात् आकिंचन धर्म का धारी बन जाता है, पूर्ण ब्रह्म में लीन होने लगता है, हो जाता है, और सारभूत आत्मस्वभाव को प्राप्त कर लेता है।

ऐसा परम पवित्र त्यागधर्म का मर्म समझकर जन-जन समस्त बाह्याभ्यंतर परिग्रह को त्यागकर ब्रह्मलीन हों, अनंत सुखी हों; इस पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ।

# 'तं सुद्धणयं वियाणीहि'

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज समयसार की चौदहवीं गाथा पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इस प्रकार है—

**जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।**
**अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥**

जो नय आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त देखता है; उसे शुद्धनय जानो।

अबद्धस्पृष्टादि पाँच भावोंरूप आत्मा के यथार्थ स्वरूप को स्वीकार करनेवाली आत्मा की प्रतीतिरूप पर्याय और स्थूल विकल्पों से पृथक् होकर आत्मा में एकाग्र होना शुद्धनय है। ज्ञान का जो अंश सामान्यस्वभाव को जानता है, उसे शुद्धनय कहते हैं। यह शुद्धनय सम्यग्दर्शन प्रगट करने की कला है।

निर्विकल्प सम्यग्दर्शन के समय गुण-गुणी भेदरहित भगवान आत्मा का शुद्धनय के अनुभवरूप एकाकार ज्ञान ही शुद्धनय है, आत्मानुभूति है, आत्मा है। श्रुतज्ञान का अंश होने पर भी शुद्धनय को आत्मा कहा गया है। नय विषयी है और आत्मा उसका विषय है; परंतु अध्यात्म में विषय और विषयी को एक करके अभेद विवक्षा से शुद्धनय अर्थात् अनुभूति को ही आत्मा कहा है।

यहाँ शिष्य पूछता है कि अवस्था में बंध होते हुए भी बद्धस्पृष्टादि भावों से भिन्न आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?

शिष्य को ऐसी तैयारी हो चुकी है कि आत्मानुभूति की बात सुनते ही अंतरंग में अव्यक्त आनंद और रोमांच हो जाता है। वह अत्यंत विनम्र होकर गुरु से कहता है—अहो! यह बात अपूर्व है। प्रभो! आपने जो कहा है वह सच है। परंतु शुद्ध आत्मा की अनुभूति कैसे हो?

पात्र शिष्य अंतरंग से प्रफुल्लित होकर अनुभूति की विधि पूछता है। अपूर्व बात

सुनकर यदि उत्साहपूर्वक प्रश्न उत्पन्न न हो तो उसने या तो सुना ही नहीं या फिर उसे विरोध होता है कि सारे दिन आत्मा ही की चर्चा होती है।

यहाँ अपूर्व देशनालब्धि द्वारा उत्तम बोध ग्रहण करनेवाले भव्य उपादान और सत् का कथन करनेवाले साक्षात् ज्ञानी निमित्त—इन दोनों की अपूर्व संधि की गयी है।

शिष्य के प्रश्न में अनेक विशेषताएँ गर्भित हैं। उसने संसार को तुच्छ जानकर मोक्ष को उत्कृष्ट जानकर मोक्ष का आदर किया है। गुरु द्वारा कहे गये वस्तुस्वरूप के लक्ष्यपूर्वक उसकी स्वीकृति की है। जिस भाव से गुरु कहते हैं, उसी भाव से शिष्य समझता है।

अनादिकालीन नियम है कि एक बार यथार्थ ज्ञानी की वाणी कान में पड़ना चाहिये, उसे सुनकर तत्त्व निर्णय करने से ही सम्यग्दर्शन का यथार्थ पुरुषार्थ होता है। गुरुगम के बिना अकेले शास्त्रों को पढ़ने-सुनने या कल्पना करने से तत्त्व समझ में नहीं आ सकता। गुरुगम से प्रत्यक्ष श्रवण को ही शास्त्रीय भाषा में देशनालब्धि कहते हैं।

शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यदेव कहते हैं—बद्धस्पृष्टादि भाव अभूतार्थ हैं, इसलिये इनसे भिन्न आत्मा की अनुभूति हो सकती है। यदि ये भाव सदा कायम रहनेवाले होते तो इनसे भिन्न आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती थी। परंतु ये भाव आत्मस्वभाव से भिन्न हैं और सदा रहनेवाले नहीं हैं। इसलिये 'मैं त्रिकाल एकाकार अखंड ज्ञायक स्वरूप हूँ'—इसप्रकार शुद्धनय के बल से अबद्धस्पृष्टता अनुभव में आती है।

यही बात दृष्टांत से समझाते हैं।

**अबद्धस्पृष्ट—**जैसे जल में डूबे हुए कमलपत्र को जल के संयोग की अपेक्षा से देखने पर अर्थात् जल स्पर्शरूप वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से देखने पर कमलपत्र का वर्तमान अवस्था में जल को स्पर्श करना व्यवहार से सत्य है। पानी और कमल का संबंध व्यवहार से है। व्यवहार दृष्टि से व्यवहार सच्चा है। जल और कमल का संबंध है ही नहीं—ऐसा नहीं है।

बाह्य दृष्टि से देखने पर अर्थात् कमलपत्र की जल से स्पर्शित होनेरूप अवस्था की अपेक्षा बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है, सत्यार्थ है; तथापि जल से किंचित् मात्र भी स्पर्श न होने योग्य कमलपत्र के स्वभाव के समीप जाकर देखने पर जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

कमलपत्र के निर्लेप स्वभाव के समीप जाकर देखा जाये तो उसमें पानी को स्पर्श करने

की योग्यता ही नहीं है। कमलपत्र को पानी से ऊपर उठाकर देखने से स्पष्ट ज्ञान होगा कि वह जल को किंचित् मात्र भी स्पर्श नहीं कर रहा है, क्योंकि वह जल से अस्पर्शी स्वभाववाला है। जल का संयोग होने पर भी वह अपने स्वभाव से तो कोरा ही है; किंतु स्वभाव के निकट जाकर देखने पर ही वह कोरा दिखायी देगा। यहाँ निकटता का अर्थ क्षेत्र की या आँख की निकटता नहीं है, परंतु स्वभाव की अपेक्षा से देखने की बात है।

इसीप्रकार अनादिकाल से बँधे हुए आत्मा का पुद्गल कर्मों से बंध और स्पर्श होने योग्य अवस्था में अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है, सत्यार्थ है; तथा पुद्गल से किंचित् मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

आत्मा अनादि काल से पुद्गल कर्मों से बँधा हुआ है। आत्मा और पुद्गल कर्म का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। जीव की नैमित्तिक दशा को कर्म का निमित्तपना व्यवहारदृष्टि से है। व्यवहार है ही नहीं—ऐसा मानना भूल है और व्यवहार से धर्म मानना भी भूल है।

संयोगदृष्टि से देखने पर बंध और स्पर्शरूप अवस्था है। यहाँ पहले बोल में द्रव्य की बात की है, अन्य बोलों से क्षेत्र कालादि की अपेक्षा स्पष्ट करेंगे। वर्तमान पर्याय में कर्मों के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, परंतु कर्म के कारण संसार है—ऐसा नहीं है। यहाँ तो मात्र व्यवहार-संबंध सिद्ध करते हैं। रागवाली दशा में कर्मों का संबंध व्यवहार से भूतार्थ है।

तथापि स्वभाव के समीप जाकर अनुभव किया जाए तो आत्म-स्वभाव में पुद्गल से बँधने और स्पर्शित होने की किंचित् मात्र भी योग्यता नहीं है। मूल असंयोगी स्वभाव की दृष्टि से अनुभव करने पर कर्म का संबंध अभूतार्थ है। सम्यग्दर्शन के विषय में व्यवहार अभूतार्थ है।

व्यवहार से कर्म का संबंध है, परंतु निश्चय से कर्म का संबंध नहीं है—ऐसा अनेकांत है। जैसे व्यवहार से कर्म का संबंध है; उसीप्रकार निश्चय से भी कर्म का संबंध मानना भ्रम है, अज्ञान है। स्वभाव को भूलकर निमित्त-नैमित्तिक संबंध का एकांत स्वीकार करना मिथ्याभाव है। इसीप्रकार निश्चय से कर्म के साथ संबंध नहीं है, परंतु व्यवहार से भी कर्म का संबंध न मानना भूल है।

इसप्रकार अबद्धस्पृष्ट आत्मा का शुद्धनय से जानना धर्म है।

**अनन्य :** जैसे मिट्टी का ढक्कन घड़ा इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अनेक आकाररूप अन्यत्व भूतार्थ है, सत्यार्थ है; तथापि सर्वतः अस्खलित अर्थात् सर्व पर्याय भेदों से किंचित् मात्र भी भेदरूप न होनेवाले सतत् माटीपन के एकाकार स्वभाव के निकट जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

मिट्टी को अनेक आकारों में देखने की दृष्टि छोड़कर सामान्य माटीपन की दृष्टि से देखने पर घट आदि सभी अवस्थाओं में एकाकार मिट्टी ही प्राप्त दिखायी देती है।

इसीप्रकार आत्मा को नर-नारकादि अनेक पुद्गलाकारों से देखने पर संसार दशा में होनेवाले विविध अवस्थाओं के भेद व्यवहार से सत्यार्थ है। चौरासी के अवताररूप विभाव व्यंजन पर्याय और निमित्ताधीन अनेक देहों के आकार के समान आत्मा का छोटा-बड़ा आकार व्यवहार से सत्य है।

जब कोयला जलाया जाता है, तब उस कोयले के ही आकार में अग्नि हुई कहलाती है। इसीप्रकार जीव छोटे-बड़े शरीर का संयोग प्राप्त करता है; तथापि उस प्रत्येक पर्याय में असंख्यात आत्म-प्रदेश एक से ही हैं।

जैसे मिट्टी नित्य एकाकार है। वैसे ही चैतन्यस्वभाव स्वक्षेत्र से नित्य अभेद एकाकार है। उस स्वभाव के निकट जाकर अभेद एकाकार दृष्टि से देखने पर नर-नारकादि अनेक पर्यायों के भेद अभूतार्थ हैं।

प्रदेशत्व गुण के कारण आकृति होती है, वह स्वयंसिद्ध पर्याय-धर्म है। शरीरादि के कारण आत्मा का आकार मानना मिथ्या है तथा पर्याय में आकार ही न मानना भी मिथ्या है। आकृति का उत्पाद एक समय की पर्यायरूप है और ध्रुव त्रिकाल एकरूप है। अनेक आकार का लक्ष्य छोड़कर एक चैतन्य आकाररूप आत्मा की दृष्टि करना धर्म है।

**नियत :** जैसे समुद्र की वृद्धि-हानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है, सत्यार्थ है। प्रति समय बदलनेवाली पानी की अवस्था अनिश्चला है, ध्रुव एकरूप नहीं है—यह सत्य है। तथापि नित्य स्थिर स्वभाव के निकट जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। पानी तो नित्य जैसा का तैसा बना हुआ है।

इसप्रकार आत्मा की वर्तमान अर्थपर्यायों में हीनाधिकरूप अवस्था होती है। ज्ञान-

दर्शनादि गुण नित्य स्थायी हैं, किंतु उनकी अवस्था में हानि-वृद्धि हुआ करती है। अवस्था में क्षयोपशम, क्षायिक इत्यादि भावों में भेद होता है—अर्थात् अवस्थादृष्टि से हानिवृद्धि होती है—यह सच है। तथापि नित्य स्थिर आत्म-स्वभाव के निकट जाकर अनुभव करने पर पर्याय में हीनाधिकता अभूतार्थ है, नित्य स्थायी नहीं है।

वर्तमान पर्याय पर लक्ष्य करने पर अखंड ध्रुव स्वभाव का लक्ष्य और सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। पर्यायदृष्टि में संसार है और स्वभावदृष्टि में मोक्ष है। आत्मज्ञ को पर्याय के लक्ष्य से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। अत: भेद का लक्ष्य गौण करके ध्रुव निश्चल एकरूप परिपूर्ण स्वभाव को लक्ष्य में लेकर उस पर अंतरंग दृष्टि का भाव देकर एकाग्र होने पर सामान्य ध्रुव स्वभाव में अभेद निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, अंशत: विकल्प टूटकर निर्मल आनंदरूप शुद्धि की वृद्धि होती है और अशुद्धि का नाश होता है।

जैसे मूसलाधार वर्षा होना और हजारों नदियों का पानी एक साथ गिरना समुद्र में ज्वार का कारण नहीं है; इसीप्रकार अनंत रागमिश्रितभाव शब्दज्ञान और शास्त्रज्ञान की नदियों से ज्ञान नहीं बढ़ता। अंतर में अनंत गुणों की अपार शक्ति प्रति समय विद्यमान है, उस पर दृष्टिपात करने से सहज स्वभाव छलककर प्रगट होता है।

जैसे सांसारिक रुचि के लिये एक ही बात का बारंबार परिचय करने में उसके प्रति अरुचि या उकताहट नहीं होती; इसीप्रकार इस अपूर्व सत् की रुचि के लिये बारंबार सत् का बहुमान करके उसके श्रवण मनन के प्रति उत्साह बढ़ाना चाहिये। यदि उसमें अरुचि या उकताहट प्रतीत हो तो समझना चाहिये कि अपनी रुचि में कमी है। जैसे दो माह में साल भर के लिये कमाई कर लेने का उत्साह होता है; उसीप्रकार अल्पकाल में अनंत भव का अभाव करनेवाली सम्यक्श्रद्धा के प्रति उत्साह छलकना चाहिये। [शेष अगले अंक में]

**१०१ ) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।**

# स्वभावज्ञान और विभावज्ञान

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ११वीं-१२वीं गाथाओं पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथायें इसप्रकार हैं—

**केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।**
**सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं॥११॥**
**सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।**
**अण्णाणं तिवियप्पं मदियाई भेददो चेव॥१२॥**

इंद्रियरहित और असहाय होने से केवलज्ञान स्वभावज्ञान है। विभावज्ञान—सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान के भेद से दो प्रकार का है। मति, श्रुत, अवधि तथा मन:पर्यय सम्यग्ज्ञानरूप हैं। कुमति, कुश्रुत और कुअवधि मिथ्याज्ञानरूप हैं।

आत्मा उपयोगस्वरूपी है, उपयोग के ज्ञान और दर्शन ऐसे दो भेद हैं। उनमें से ज्ञानोपयोग के भेदों का यह वर्णन चल रहा है। यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे भेद बतलाये हैं। जिस ज्ञान में निमित्तरूप परद्रव्य नहीं—वह ज्ञान प्रत्यक्ष और स्वभावज्ञानरूप है। तथा जिसमें निमित्तरूप परद्रव्य का अवलंबन है—वह विभावज्ञान है।

असहायकार्यस्वभावज्ञान वह केवलज्ञान है। वह ज्ञान कैसा है ?

जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से केवल है; आवरणरहित स्वरूपवाला होने से क्रम, इंद्रिय और देश-कालादि के व्यवधान से रहित है; एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता, समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है, इसलिये असहाय है; वह कार्यस्वभावज्ञान है।

केवलज्ञान अकेला है, उसमें किसी निमित्त का मेल-मिलाप या अशुद्धता नहीं है। वह ज्ञान आवरणरहित होने से क्रमरहित जाननेवाला है। इंद्रियों का निमित्त उसमें नहीं है तथा देश-काल का अंतराय भी उसमें नहीं है। अति दूरक्षेत्र अथवा अति दीर्घकाल जानने में भी उसको विघ्न नहीं है। ऐसा आत्मा का ज्ञानसामर्थ्य है, उसमें जो हीनता हो वह आदरणीय नहीं है।

केवलज्ञान समस्त ज्ञेयों को एकसाथ जाननेवाला है, एक-एक वस्तु को क्रम से नहीं जानता इसलिये वह असहाय है—ऐसा कार्यस्वभावज्ञान है। पर्याय में ऐसा ज्ञान प्रकट होने का नाम कार्यस्वभावज्ञान है।

और कारणज्ञान भी वैसा ही है। त्रिकाली ज्ञानोपयोगरूपपरिणति स्वरूपप्रत्यक्ष है, कारणस्वभावज्ञान है। जैसा कार्यज्ञान कहा है, वैसा ही कारणज्ञान है। ऐसा क्यों? निजपरमात्मा में रहनेवाले सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहजपरमचित्शक्तिरूप निजकारण-समयसार के स्वरूपों को युगपत् जानने में समर्थ होने से वैसा ही है। देखो, यहाँ त्रिकाली कारणज्ञान में भी निजकारणसमयसार को जानने की सामर्थ्य कही गयी है—वह कहीं कार्यरूप नहीं है, किंतु वैसी सामर्थ्य है। यह तो त्रिकालस्वरूपप्रत्यक्ष है, इसमें कोई भेद नहीं पड़ता।

एकरूप सहजचित्शक्तिरूप त्रिकालज्ञानोपयोग है। उसमें निजकारणपरमात्मा में रहनेवाले सहज दर्शन-चारित्र-सुख और सहज परमचित्शक्तिरूप निजकारणपरमात्मा के स्वरूपों को युगपत् जानने की सामर्थ्य है—ऐसा कारणस्वभावज्ञान है। यह ज्ञान शक्तिरूप है, स्वभावरूप है; कार्यरूप नहीं है।

यदि कोई ऐसा कहे कि केवलज्ञान को तो कर्म के क्षय की अपेक्षा से क्षायिकज्ञान कहा, और उसी ज्ञान को अकेले आत्मा के पारिणामिक स्वभाव की अपेक्षा से सहज पारिणामिकभावरूप से कहा?

तो उससे कहते हैं कि नहीं—यह तो त्रिकाली उपयोग की बात है। केवलज्ञान तो पर्याय में नवीन प्रकट होता है—उसकी यह बात नहीं है। यहाँ जो स्वरूपप्रत्यक्ष कहा वह त्रिकाल शक्तिरूप स्वभाव की बात है। यह जो परमस्वभावरूप कारणज्ञान है, वह द्रव्य का विशेषरूप वर्तमान है—त्रिकाल एकरूप है; ज्ञान का जो त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्षरूप भाव है उसको यहाँ स्वरूपप्रत्यक्ष कहा है। केवलज्ञान पर्याय प्रकट होती है, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष नहीं कहा, उसको तो सकलप्रत्यक्ष कहा गया है।

यहाँ केवलज्ञान को कार्यस्वभावज्ञान कहा और कारणस्वभावज्ञान भी वैसा ही है—ऐसा कहा, वह शक्तिरूप समझना।

निजकारणपरमात्मा कैसा है? सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहज परमचित्शक्तिरूप है। उसे युगपत् जानने की शक्ति कारणस्वभावज्ञान में है। स्वाभाविकज्ञान का यह वर्णन है। उसमें कार्य और कारण दोनों के दो भेद हैं। कार्यस्वभावज्ञान तो असहाय, शुद्ध और समस्त पदार्थों को एक साथ जाननेवाला है और कारणस्वभावज्ञान में भी वैसी ही सामर्थ्य है। यह कारणस्वभावज्ञानोपयोग तो सभी जीवों को वर्तमान में वर्त रहा है।

सहज परमचित्शक्ति, दर्शन, चारित्र और सुख यह सब त्रिकालस्वभाव है। कारणज्ञान उनको युगपत् जानने की सामर्थ्यवाला है। केवलज्ञान तो सबको प्रत्यक्ष जानता है और कारणस्वभावज्ञान में भी सबको जानने की सामर्थ्य है, अतः वह भी वैसा ही है। सहजदर्शनादिरूप निजकारणसमयसार को जानने की शक्ति है—ऐसा कहकर त्रिकालीकारण -स्वभावज्ञान का सामर्थ्य बतलाया है। वह कहीं उत्पाद-व्ययरूप परिणमन करके जानता नहीं; किंतु उसमें ऐसा त्रिकाली सामर्थ्य है, अतः वह स्वरूपप्रत्यक्षज्ञान है।

इसप्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा। कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान यह दोनों ही शुद्ध हैं। सहज दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आनंदस्वरूप जो अपना कारणपरमात्मा है, उसको जानने का सामर्थ्य इस कारणस्वभावज्ञानोपयोग में है।

यह किस आत्मा की बात है? मात्र सिद्ध जीवों की बात नहीं, किंतु सभी जीवों का ऐसा उपयोग त्रिकाल वर्त रहा है—उनकी यह बात है। उसकी प्रतीति करके उसका अवलंबन ले तो कार्यस्वभावज्ञान प्रकट होता है।

केवलज्ञान एक साथ तीन काल, तीन लोक को जानता है—यह बात जमना भी लोगों को कठिन पड़ रही है। यदि केवलज्ञान में सब कुछ जानने में आ गया और वैसा ही होगा भी; तब तो कुछ फेरफार करने का पुरुषार्थ रहता ही नहीं, अतः पुरुषार्थ तो उड़ गया—ऐसा अज्ञानी मानता है। किंतु भाई! जहाँ ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति की वहीं पुरुषार्थ आ गया, पर में तो कुछ फेरफार करना ही नहीं है।

कार्यस्वभावज्ञान तो केवलज्ञान है, इसके अतिरिक्त यहाँ तो कारणस्वभावज्ञानोपयोग का वर्णन किया है। आगे इसी उपदेश को 'ब्रह्म-उपदेश' कहेंगे। वहाँ कहेंगे 'इसप्रकार संसाररूपी लता का मूल छेदने के लिये हँसियारूप इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया।' कैसी

अलौकिक बात है! केवलज्ञान कैसे प्रगट हो?—निजकारणसमयसार को जाननेवाला जो त्रिकालस्वरूपप्रत्यक्ष कारणस्वभावज्ञानोपयोग है, उसके आश्रय से केवलज्ञानरूपी कार्य प्रकट होता है।

सहजदर्शन-चारित्र-सुख और सहज चित्शक्तिरूप निजकारणसमयसार है, उसको युगपत् जानने का सामर्थ्य कारणस्वभावज्ञान में है; यह दोनों मिलकर परमपारिणामिकभाव पूरा होता है। वह शुद्धनिश्चयनय का विषय है और जो केवलज्ञानादि पर्यायें प्रकट होती हैं, वे व्यवहारनय का विषय हैं; इसप्रकार दोनों मिलकर प्रमाणज्ञान होता है।

त्रिकालकारणस्वभावरूपज्ञान की प्रतीति करने पर साधकदशारूप कार्य प्रकट होता है, पूरा कार्य तो केवलज्ञान है—इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं है। त्रिकाल वर्तता कारण स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान है, वही केवलज्ञान का कारण है, वह सदा ही वैसे का वैसा ही ब्रह्मस्वरूप है, इसलिये इस उपदेश को ब्रह्म-उपदेश कहा है। वेदांतवाले जो ब्रह्म कहते हैं उसकी यह बात नहीं है, उन्हें तो सामान्य-विशेष का भी पता नहीं है। यहाँ तो त्रिकालशक्तिरूप जो कारणस्वभावज्ञान है, उसके आश्रय से केवलज्ञान प्रकट होता है और लोकालोक को जानता है—उसकी बात है।

केवलज्ञान को स्व की अपेक्षा से तो पारिणामिकभाव की पर्याय कहा जाता है और निमित्त की अपेक्षा से क्षायिकभाव भी कहा जाता है। उसीप्रकार क्रोध को निमित्त की अपेक्षा से उदयभाव कहा जाता है और उसे ही पारिणामिकभाव की अपेक्षा से पारिणामिकभाव की पर्याय कहा जाता है और अपना ही परिणमन होने से उसको स्वभाव भी कहा जाता है। क्षायोपशमिकज्ञान को निमित्त की अपेक्षा से क्षयोपशमभाव और स्व की अपेक्षा से पारिणामिकभाव की पर्याय भी कहते हैं, किंतु यहाँ वह बात नहीं है। यहाँ तो सब जीवों को जो त्रिकाल सामर्थ्यरूप एक स्वभावज्ञानोपयोग वर्त रहा है—उसकी बात है। आगे ४७वीं गाथा में सब जीवों को सिद्ध सदृश कहेंगे। वहाँ कहेंगे कि 'जैसे सिद्धात्मा हैं, वैसे ही भावलीन संसारी जीव हैं; क्योंकि वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की तरह जन्म-जरा-मरण से रहित और अष्ट-गुणालंकृत हैं। वहाँ संसारीजीवों को भावलीन भी कहा और फिर सिद्ध सदृश अष्टगुणों से अलंकृत भी कहा; सो वहाँ वर्तमान पर्याय को लक्ष में न लेकर ही सिद्ध जैसा कहा है, किंतु

कहीं उनके अष्टगुण सिद्ध के समान वर्तमान में प्रकट नहीं हैं।

यहाँ अभी जो कारणस्वभावज्ञानोपयोग का कथन किया गया है, वह तो सब जीवों को वर्तमान वर्त रहा है, वह तो सभी जीवों में त्रिकाल है, और उसी के आश्रय से कार्यस्वभावज्ञान नया प्रकट होता है। यह दोनों ही ज्ञान शुद्ध हैं।

इसप्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा। अब आगे शुद्धाशुद्ध ज्ञान का स्वरूप तथा भेद कहते हैं।

साधर्मी जीव को आत्मभान सहित जो सम्यग्ज्ञान प्रकट हुआ है, उसके मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय चार भेद हैं।

(१) मतिज्ञान अनेक भेदवाला है। उपलब्धि, भावना तथा उपयोग के भेद से मतिज्ञान तीन प्रकार का है। मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम जिसमें निमित्त है ऐसी अर्थग्रहणशक्ति (-पदार्थ को जानने की शक्ति) वह उपलब्धि है। जाने हुए पदार्थ का पुन: पुन: चिंतन वह भावना है। 'यह काला है', 'यह पीला है' इत्यादिरूप से अर्थग्रहणव्यापार (-पदार्थ को जानने का व्यापार) उपयोग है। मतिज्ञान चार भेदवाला भी है—अवग्रह, ईहा, (-विचारणा), अवाय (निर्णय), और धारणा। मतिज्ञान बाहर भेदवाला भी है—बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनि:सृत, नि:सृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव और अध्रुव। (विशेष के लिये मोक्षशास्त्र का अवलोकन करो)।

(२) लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। श्रुतज्ञान के उपयोग को यहाँ भावना में समाविष्ट कर दिया है।

(३) देश, सर्व और परम के भेद से अर्थात् देशावधि, सर्वावधि और परमावधि के भेद से अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। अंदर में उपयोग लगाने पर स्वर्ग-नर्क को जान लेना इस ज्ञान का सामर्थ्य है।

(४) ऋजुमति और विपुलमति के भेद से मन:पर्ययज्ञान दो प्रकार का है। यह ज्ञान मुनि के ही होता है, वह भी सबको नहीं; किंतु किसी-किसी महामुनि को ही होता है। सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों के होते हैं, सुअवधिज्ञान किसी-किसी सम्यग्दृष्टि को होता है, मन:पर्ययज्ञान किन्ही-किन्ही मुनिवरों को-विशेष संयमधरों को होता है।

परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टियों को ही यह चार सम्यग्ज्ञान हो सकते हैं।

देखो, यहाँ यह बताया है कि भले ही अवधि या मन:पर्ययज्ञान हो अथवा चौथा, पाँचवाँ, छठ्ठा इनमें से कोई भी गुणस्थान हो; किंतु जो परमभाव में स्थित होवे तब ही वह धर्मी है और उसी को ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है। परमभाव का अर्थ क्या? शरीरादि तो पर हैं ही, पुण्य-पाप विकार हैं और पर्याय भी क्षणिकभाव है—वह कहीं परमभाव नहीं है। त्रिकाल एकरूप परमपारिणामिक स्वभाववाला जो आत्मा है उसे यहाँ परमभाव कहा है। सम्यग्दृष्टि जीव उसी की भावना में स्थित होते हैं। किसी निमित्त की, संयोग की अथवा विकार की भावना करे वह सम्यग्दृष्टि नहीं है, उसे सम्यग्ज्ञान होता नहीं।

सम्यग्ज्ञान कैसे हो?—जो अपना कारणसमयसारस्वभाव है, उसकी भावना करने से ही सम्यग्ज्ञान होता है। त्रिकाली कारणस्वभावज्ञान सहित जो संपूर्ण आत्मा है, वह परमभाव है, उसकी भावना में जो स्थित है, उसी को सम्यग्ज्ञान होता है। छट्ठे, सातवें गुणस्थान में झूलते भावलिंगी संत हों अथवा राज्यभोक्ता चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ हों, इन दोनों को ऐसे परमभाव की ही भावना होती है। बाहर के क्रियाकांड के ऊपर से गुणस्थान का माप नहीं है किंतु परमभाव में जिस अंश में स्थिति है, उस अंश में ही गुणस्थान होता है। जिसको ऐसे परमभाव का भान नहीं है, उस मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को कुमति-कुश्रुत और विभंग कहते हैं।

ज्ञानोपयोग के भेद बतलाये उनमें कौन से प्रत्यक्ष और कौन से परोक्ष हैं—यह कहते हैं।

सहजज्ञान, शुद्ध अंत:तत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से स्वरूपप्रत्यक्ष है। आत्मा का जो परमस्वभावभाव है, वह शुद्ध अंत:तत्त्वरूप परमतत्त्व है, उसमें कारण स्वभावज्ञान व्यापक है, इसलिये वह ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है। कारणस्वभावज्ञान वह सहजज्ञान है और उसको ही स्वरूपप्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

स्वरूपप्रत्यक्ष स्वरूप से प्रत्यक्ष, स्वरूप अपेक्षा से प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष। सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्षज्ञान त्रिकाल है। वह ज्ञान उत्पाद-व्ययरूप पर्याय में रहनेवाला नहीं है, अपितु जो त्रिकाल शुद्ध परमपारिणामिकभावरूप परमतत्त्व है, उसमें वह ज्ञान व्याप्त है, अत: आत्मा के साथ ही त्रिकाल वर्तता है। इस स्वरूपप्रत्यक्षज्ञान का कभी विरह नहीं है, तीनों काल वह प्रत्यक्ष ही है, अत: वह स्वरूपप्रत्यक्षज्ञान है-वह त्रिकाल है। उसमें समूचे आत्मा को

युगपत् जानने का सामर्थ्य त्रिकाल है। केवलज्ञान तो नया होता है, वर्तमान में उसका विरह है; अत: वह स्वरूपप्रत्यक्ष नहीं है, वह प्रकट होने के बाद संपूर्ण प्रत्यक्ष है किंतु स्वरूपप्रत्यक्ष नहीं है। और यह सहजज्ञान तो त्रिकाल है-स्वरूपप्रत्यक्ष है, तीनों काल उसमें पूर्ण जानने का सामर्थ्य पड़ा ही है। ऐसा स्वभाव ही सम्यग्दर्शन का विषय है।

ज्ञान-दर्शनगुण तो त्रिकाल है, उस गुण की यह बात नहीं है। परंतु जैसा गुण है वैसा ही उसका विशेष-विशेष वर्तमान सदा वर्तता ही रहता है। यदि उसका एकरूप रहनेवाला विशेष न हो तो ज्ञान-दर्शन का परमपारिणामिक भाव सिद्ध न हो। जैसे धर्मास्तिकाय आदि की पर्याय एकरूप त्रिकाल है, वैसे ही आत्मा के ज्ञान-दर्शन में एकरूपकारणस्वभावज्ञानोपयोग त्रिकाल वर्तता है।

यहाँ उपयोग की बात होने से ज्ञान और दर्शन इन दो गुणों के त्रिकाली कारणस्वभावज्ञानोपयोग की बात ली है। आगे समूचे द्रव्य की कारणशुद्धपर्याय की बात आयेगी, उसमें तो सभी गुणों की एकरूप कारणशुद्धपर्याय की बात आयेगी। ऐसा सामान्य-विशेष से परिपूर्ण आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है।

अहो! यह शास्त्र भी अलौकिक और उसके भावों का स्पष्टीकरण भी अलौकिक है।

आत्मा के उपयोग का वर्णन चल रहा है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम को उपयोग कहते हैं, उसके प्रकारों का वर्णन चलता है। (१) कारणस्वभावज्ञान (२) कार्यस्वभावज्ञान (३) कुमति-कुश्रुत और विभंग यह तीन अज्ञान; (४) सम्यक्मति-श्रुत-अवधि और मन:पर्यय—यह चार ज्ञान इसप्रकार कुल नव हुए। इनमें प्रत्यक्ष और परोक्ष के प्रकार बतलाते हैं। कारणस्वभावज्ञानोपयोग तो सहजप्रत्यक्ष है अथवा त्रिकालशक्तिरूप स्वरूपप्रत्यक्ष है और केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है। 'रूपिष्ववधे:' (अवधिज्ञान का विषय-संबंध रूपीद्रव्यों में है) ऐसा आगम का वचन होने से अवधिज्ञान विकलप्रत्यक्ष (एकदेशप्रत्यक्ष) है। उसके अनंतवें भाग वस्तु के अंश का ग्राहक (जाननेवाला) होने से मन:पर्ययज्ञान भी विकलप्रत्यक्ष है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों ही परमार्थ से परोक्ष और व्यवहार से प्रत्यक्ष है।

यहाँ पर-विषय की अपेक्षा से मति-श्रुत को परोक्ष माना है किंतु स्व-विषय की अपेक्षा

से तो वे भी प्रत्यक्ष हैं और पर-विषयों को इंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष जानते हैं, इस अपेक्षा से इन दोनों को व्यवहारप्रत्यक्ष कहा गया है।

यहाँ उपर्युक्त ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल निजपरमतत्त्व में स्थित एक सहजज्ञान ही है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मोक्ष का परमार्थ कारण नहीं है। मुति-श्रुतादि को परंपरा मोक्ष का कारण कहा जाता है। जो त्रिकालीकारणस्वभावज्ञान है, वही मोक्ष का मूल है—वह सहजज्ञान त्रिकाल है। चार ज्ञानों को मोक्ष का कारण नहीं कहा और केवलज्ञान तो मोक्षस्वरूप ही है, और उसका कारण त्रिकाली सहजज्ञान है। वह सहजज्ञान पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण भव्य जीवों को परमस्वभाव है। यद्यपि अभव्य को भी वैसा सहजज्ञान त्रिकाल है, किंतु उसे उसका भान न होने से वह परमस्वभाव की गणना में नहीं आता। भव्यजीव का परमस्वभाव यह त्रिकाली सहज एकरूपज्ञान है और यही आदरणीय है, क्योंकि इसी के आश्रय से केवलज्ञान प्रकट होता है। त्रिकालस्वरूप प्रत्यक्षज्ञान के आधार से ही सम्यक् मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय तथा केवलज्ञान होता है। किसी पर के आश्रय से ज्ञान विकसित नहीं होता। ऐसे सहजज्ञान को उपादेय करना ही मोक्ष का कारण है।

अब यह सहजचिद्विलासरूप से अभेद आत्मा ही भाने योग्य है ऐसा कहते हैं।

आत्मा कैसा है ?

(१) सदासहजपरमवीतरागसुखामृत है। यह पर्याय की बात नहीं, किंतु त्रिकाली शक्ति की बात है।

(२) अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप है, जिसको कोई विघ्न नहीं ऐसा त्रिकाल निरावरण ज्ञान है।

(३) सदा अंतर्मुख ऐसे स्व-स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहजपरमचारित्र-और

(४) तीनों काल अविचिछन्न होने से सदा निकट ऐसे परम चैतन्यरूप की श्रद्धा-यह श्रद्धा भी त्रिकाली है। इसप्रकार त्रिकाली सहज सुख-ज्ञान-चारित्र और श्रद्धा यह स्वभाव अनंत चतुष्टय है—इससे आत्मा सनाथ है। यहाँ चार बोल कहे, वह प्रकट होनेवाली पर्याय की बात नहीं है, किंतु त्रिकाली सहज शक्ति की बात है। श्रद्धा कैसी है ? तीनों काल अविच्छिन्न (अटूट) होने से जो आत्मा के सदा निकट है—ऐसी चैतन्यरूप की त्रिकाली श्रद्धा है।

त्रिकाली चार स्वभाव कहे उनका रक्षण करनेवाला आत्मा है और वह मुक्ति सुंदरी का नाथ है—ऐसे आत्मा की सहज चिद्विलासरूप से सदा भावना करना योग्य है।

आत्मा सनाथ है अर्थात् जिसका कोई दूसरा नाथ नहीं और जो स्वयं मुक्तिसुंदरी का नाथ है; इसप्रकार अनाथ और सनाथ दोनों बोल आत्मा पर लागू पड़ते हैं। उसकी भावना करना मुक्ति का उपाय है।

सहज चिद्विलासरूप स्वभाव अनंतचतुष्टययुक्त आत्मा का अनुभव ही मुक्ति का कारण है। देखो तो सही! मुनिराज को आत्मस्वभाव का वर्णन करते हुये विशेषण भी ओछे पड़ जाते हैं। आत्मा के त्रिकाली चतुष्टय की बात चल रही है। त्रिकाली श्रद्धा-त्रिकाली ज्ञान-त्रिकाली सहजसुख और त्रिकाली चारित्र—ऐसे स्वभावचतुष्टयसहित आत्मा की भावना करने की यह बात है।

इसप्रकार संसाररूपी लता के मूलोच्छेदन में हँसियारूप इस उपन्यास से ब्रह्मोपदेश किया। इन बारह गाथाओं में संसार का मूलनाशक ब्रह्मोपदेश किया।

जिसप्रकार समयसार में बारह गाथायें मूलभूत हैं; उसीप्रकार यहाँ भी बारह गाथाओं में ब्रह्म-उपदेश किया। जैसा आत्मा कहा, वैसे आत्मा की भावना करनेवाले को संसार का मूलोच्छेदन होकर मुक्ति प्राप्त होती है। ●●


नया प्रकाशन -

**आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी की**

**महानकृति**

**मोक्षमार्गप्रकाशक**

का नया संस्करण

**डॉ० हुकमचंद भारिल्ल के द्वारा संपादित होकर**

नये रूप में, नयी साज-सज्जा के साथ

मूल्य : ६ रुपया

# द्रव्यसंग्रह प्रवचन

**वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।**

[गतांक से आगे]

## सिद्धदशा

अब सिद्धों की बात करते हैं। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारणभूत जो परम यथाख्यातचारित्र है, वह पूर्व में कहे हुये चौदह गुणस्थानों एवं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित तथा आठ गुणों में गर्भित निर्नाम, निर्गोत्र वगैरह अनंत गुणों सहित सिद्धदशा में होता है।

अब यहाँ समझने के योग्य शिष्य प्रश्न करता है कि केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता हो गयी है। तत्त्वार्थसूत्र में तो 'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः—ऐसा कहा है। क्षायिक सम्यक्त्व तो चौथे से सातवें तक हो जाता है, कारण कि किसी जीव को क्षयोपशम सम्यक्त्व हो तो क्षपक श्रेणी मांडने के पूर्व क्षायिक कर लेता है; क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व बिना क्षपक श्रेणी नहीं होती, इसलिये सम्यक्त्व क्षायिक होता है। चारित्र बारहवें गुणस्थान में पूर्ण हुआ है और ज्ञान तेरहवें में परिपूर्ण प्रगट हुआ है। ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता होने से, मोक्षमार्ग पूर्ण होने से, उसी समय जीव को मोक्ष होना चाहिये? आपने तो कहा कि कोई केवली तेरहवें गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त रहे और कोई अरबों वर्ष तक रहे तो उसका क्या कारण? उसकी मुक्ति शीघ्र ही क्यों नहीं होती? शिष्य ऐसी शंका करता है।

**समाधान**—केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय यथाख्यातचारित्र हो गया है, परंतु संपूर्ण आत्मा का चारित्र—परमयथाख्यातचारित्र प्रगट नहीं हुआ है।

अघातिकर्म बाकी हैं, इसलिये सिद्धदशा नहीं होती—ऐसा नहीं है। इसे दृष्टांत से समझाते हैं। जैसे कोई मनुष्य चोरी नहीं करता, परंतु चोर के संसर्ग से उसको दोष लगता है; उसीप्रकार केवली भगवान को चारित्र के नाश करनेवाले मोहकर्म के उदय का अभाव है, लेकिन कंपनरहित शुद्धआत्मा के आचरण से विलक्षण जो मन-वचन-काय के निमित्त से

कंपन व्यापार है, वह संपूर्ण आत्मा के चारित्र में दूषण उत्पन्न करता है। आत्मा में कंपन की योग्यता है, और उसमें अघातिकर्मों का निमित्त है; अघाति कर्म दूषण नहीं कराते हैं। इसके बाद अयोगी दशा में चौदहवें गुणस्थान में कंपन नहीं है, लेकिन संस्कार रहता है, वह चारित्र में दोष उत्पन्न करता है, उसमें चार अघातिकर्म निमित्त हैं। अन्त समय में अघाति कर्म का उदय मंद है, वह निमित्त मात्र है, और उस समय संस्कार के दोष का अभाव करते हैं और अयोगीजिन मोक्ष अवस्था प्राप्त करते हैं।

अब मार्गणास्थान की बात करते हैं। गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सक्यक्त्व, संज्ञा तथा आहार—ऐसे १४ प्रकार के मार्गणास्थान जानना।

यह जीवपदार्थ है, उसकी वर्तमान दशा अथवा पर्याय सत् है, वह किसी ने बनायी नहीं है। जीव पदार्थ अनादि-अनंत द्रव्यस्वभाव से होने पर भी वर्तमान पर्याय १४ मार्गणास्थानरूप होती है, वह स्वयं के कारण होती है—उसका ज्ञान कराकर उस पर्याय का लक्ष्य छुड़ाने को त्रिकाली स्वभाव का आश्रय कराना—तत्संबंधी बात करते हैं।

**( १ ) गतिमार्गणा**—चिदानंद आत्मा की संपूर्ण प्राप्ति से सिद्धदशा होती है। इससे विलक्षण चार प्रकार की गतियाँ संसार दशा में होती हैं। नरकगति नामकर्म के कारण जीव नरक में नहीं जाता, लेकिन नरकगतिरूप जीव की योग्यता है, वर्तमान गति की पर्याय स्वतंत्र आत्मा से हुयी है, ऐसा ज्ञान करना। नरक में रहता हुआ क्षायिकसम्यक्त्वी ज्ञान करता है कि नारकीपने की योग्यता स्वयं की पर्याय में है, वह कर्म के कारण नहीं है, लेकिन स्वयं के कारण है, तो भी वह पर्याय है। इसलिये आदरणीय नहीं है। आश्रय तो स्वभाव का ही रहता है।

तिर्यंचगति में निगोद से लेकर संज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यंच तक ले लेना। उस गतिरूप की योग्यता जीव की है। अढ़ाई द्वीप बाहर असंख्यात तिर्यंच पाँचवें गुणस्थान में हैं। वे समझते हैं कि तिर्यंचरूप रहने की स्वयं की योग्यता है, लेकिन पर्याय आदरणीय नहीं है। द्रव्य ही आदरणीय है। बादर सूक्ष्म एकेन्द्रियादि भिन्न-भिन्न भेदों को केवलज्ञानी जैसे स्वतंत्र जानते हैं, वैसे श्रुतज्ञानी भी श्रुतज्ञान से सभी पर्यायें स्वतंत्र हैं, ऐसा जानते हैं, फिर भी पर्याय आदरणीय नहीं है।

मनुष्यगति पूर्वकर्म के कारण से नहीं है, मनुष्य शरीर तो पुद्गल है, इसकी बात नहीं

है। आत्मा की उस रूप की योग्यता वह मनुष्यगति है, पर्याय का ज्ञान किया वह आदरणीय नहीं है—ऐसा जानकर द्रव्य आदरणीय है ऐसी श्रद्धा करना।

देवगतिरूप जीव की पर्याय जीव की योग्यता है, वह आदरणीय नहीं है, द्रव्य आदरणीय है।

**( २ ) इंद्रियमार्गणा**—आत्मा स्वयं के अवलंबन से परिपूर्ण काम करता हो तो ज्ञान में खंड-खंड दशा न हो, अर्थात् भावेन्द्रिय न हो। आत्मा कैसा है ? आत्मा जड़ इंद्रियों से अगम्य है तथा भावेन्द्रियों के अवलंबन से भी गम्य नहीं है। वस्तु जो सत् है, वह आदि-अंतरहित है, फिर भी वह अखंड ज्ञानस्वभावी वस्तु के आश्रय से अनुभव की जा सकती है; केवलज्ञान में पूर्णगम्य है और साधक को स्वसंवेदन ज्ञान से अल्पगम्य है। जीव स्वयं के शुद्धात्मा का अवलंबन करता नहीं है, इसलिये उसको भावेन्द्रियपना भी प्राप्त होता है। एकेन्द्रियादिपना शुद्धात्म-तत्त्व से प्रतिपक्षीभूत है। एकेन्द्रिय जीवों के ज्ञान का अल्प क्षयोपशमपने परिणमन हो रहा है, वह स्वयं के कारण से है, कर्म के कारण नहीं है।

यहाँ शरीर अथवा जड़ इंद्रिय की बात नहीं है, लेकिन अरूपी भावेन्द्रियपने की स्वतंत्रता बतलाना है। यह अशुद्धनय का विषय है। पर्याय में एकेन्द्रियपना है, तो भी उसी समय स्वभाव तो अतिन्द्रिय आनंदकंद है, ऐसा शुद्धनय से धर्मी जीव जानता है। इसप्रकार दोनों नयों का ज्ञान कराता है। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य में हो नहीं सकती। इसलिये सर्वज्ञ का यथार्थ निर्णय पहिले ही होना चाहिये। एक समय में प्रत्यक्ष ज्ञान में सर्वज्ञ ने संपूर्णरीत्या देखा है। अल्पज्ञ परोक्षज्ञान द्वारा यह बात निश्चित नहीं कर सकता है। एकेन्द्रिय की अवस्था स्वतंत्र है-ऐसा जानकर भी आत्मा आनंदकंद है, ऐसी दृष्टि करना यह प्रयोजन है। दो इन्द्रियपना यह भी ज्ञान की खंड-खंड अवस्था है, वह कर्म के कारण नहीं है; फिर भी स्वभाव तो अतीन्द्रिय है। अन्यमत का निषेध कराकर, अशुद्धनय के विषयभूत पर्याय का ज्ञान कराकर, उसका निषेध कराकर, त्रिकाली शुद्धस्वभाव की श्रद्धा कराते हैं।

तीन-चार पाँच इंद्रियों का क्षयोपशम भी स्वयं के कारण से है। कर्म का क्षयोपशम है, इसलिये ज्ञान का उघाड़ है ऐसा नहीं है। संसारीजीव को ढूँढ़ना हो तो वह इंद्रियमार्गणा से जाना जायेगा। केवली को भावेन्द्रियपना नहीं है, उनको अतीन्द्रिय अनुभव है।

**( ३ ) कायमार्गणा**—आत्मा तो शरीर रहित है। औदारिक, वैक्रियक, आहारक, कार्माण और तैजस ऐसे पाँच प्रकार के शरीर का अत्यंत अभाव है। आत्मतत्त्व को भूला हुआ जीव पृथ्वी आदिरूप हीनदशा को प्राप्त करता है। ऊपर जो दिखता है, वह तो पृथ्वी का शरीर है, उसकी बात नहीं है। अंदर पृथ्वीकायरूप जीव की पर्याय की बात है, वह स्वतंत्र है। पृथ्वीकायरूप जीव की दया पालने की बात नहीं है, यह अवस्था बतलाकर उसका आश्चर्य छुड़ाकर शुद्ध स्वभाव का आश्रय कराना है। जलकाय की दशारूप से जीव स्वयं हुआ है, उसको मार सकना अथवा जिला सकना उसकी बात नहीं है, जीव की स्वतंत्र दशा बतलाना है। अग्निकायरूप से जीव स्वयं हुआ है, ऊपर दिखता है वह तो शरीर है, उसकी बात नहीं है। अंदर एकेन्द्रियपने की योग्यता की बात है। इसीप्रकार वायुकायरूप से, वनस्पतिकायरूप से अथवा त्रसकायरूप से जीव स्वयं परिणमता है। कोई ईश्वर तो उसका कर्ता नहीं है, लेकिन कर्म के कारण उसरूप दशा हुई है, ऐसा भी नहीं है। उसीप्रकार पूर्वपर्याय के लिये भी नहीं है।

यह वर्तमान पर्याय स्वतंत्र है, ऐसा अशुद्धनय से बतलाते हैं, लेकिन वह एक समय की पर्याय है इसलिये उसका अवलंबन लेना युक्त नहीं है। त्रिकाली स्वभाव का अवलंबन लेना ठीक है। त्रिकाली स्वभाव का अवलंबन लेना कहा इससे एकेन्द्रियादि जीवों के भेद हैं ही नहीं, ऐसा जानें तो ज्ञान असत्य ठहरता है। वर्तमान पर्याय अथवा भेद उसका अस्तित्व उड़ाने से श्रद्धा ज्ञान सत्य नहीं होते हैं। और एकेन्द्रियादि पर्यायें ही जीव का पूर्ण स्वरूप मानें तो भी असत्य है। इसलिये जैसा है वैसा समझना चाहिये।

**( ४ ) योगमार्गणा**—भगवान आत्मा तो पंद्रह प्रकार के योग के व्यापार से रहित है; पर्याय में कंपन है, वह स्वभाव नहीं है। ऐसा व्यापार-रहित शुद्धात्मतत्त्व से विलक्षण मनोयोग, वचनयोग और काययोग—ऐसी तीन प्रकार की योगमार्गणा है। अथवा विस्तार से पंद्रह प्रकार हैं। पंद्रह प्रकार में जिस-जिस प्रकार का योग रहता हो उस-उस प्रकार का समझना। मन-वचन-काय तो जड़ हैं, उसकी बात नहीं है; लेकिन आत्मा के प्रदेशों का कंपन वह योग है और उसमें जो निमित्त हो उस-उस प्रकार का योग कहा जाता है।

मन की ओर झुकाव अथवा कंपन वह मनोयोग है। वचन के निमित्त से कंपन वह वचनयोग; काय के निमित्त से कंपन वह काययोग है। सत्य बोलने के भाव के समय प्रदेशों के

कंपन को सत्यमनोयोग कहते हैं। आत्मा के असंख्य प्रदेशों में सूक्ष्म परिस्पंदन होता है, यह कंपन की बात है। असत्य बोलने के भाव के समय प्रदेशों का कंपन यह असत्यमनोयोग है। इस सत्यासत्य मनोयोग और सत्यासत्य मनोयोग के विलक्षण मनोयोग, ऐसे चार प्रकार से प्रदेशों में स्वतंत्र कंपन होता है। इसप्रकार पर्याय की स्वतंत्रता का ज्ञान कराकर द्रव्यदृष्टि कराते हैं। इसप्रकार सत्य, असत्य, सत्यासत्य और सत्यासत्य से विलक्षण—ऐसी चार प्रकार की वाणी बोली जाये, उस समय जो कंपन हो वह वचनयोग है।

इसप्रकार प्रदेशों के कपन में जिसप्रकार का शरीर निमित्त हो उसप्रकार योग (काययोग) समझना। औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्माण ऐसे सात प्रकार के काययोग समझना। किसी मुनि को आहारकयोग होता है, कार्माणयोग जीवों के विग्रहगति में होता है। उस-उस प्रकार की स्वतंत्रता स्वयं के कारण से है, कर्म के कारण से नहीं है। इसप्रकार पर्याय का ज्ञान कराया तथा द्रव्य कंपनरहित है ऐसी दृष्टि भी साथ में करायी है। [क्रमशः]

# ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

**प्रश्न**- सम्यग्दृष्टि सप्तभय रहित होता है, किंतु मुनि तो कहते हैं कि हम भव से डरते हैं—इसका क्या अभिप्राय है ?

**उत्तर**- यह तो चतुर्गति के भव का भय लगा है अर्थात् भव के कारणरूपभाव से डरकर भवरहित भगवान की ओर अंतर्मुख जाना चाहते हैं—इसलिये ऐसा कहते हैं। वास्तव में उन्हें बाह्य सामग्री का भय नहीं है।

**प्रश्न**– चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के तो भय होता दिखायी पड़ता है और वह उसका उपाय भी करता है, फिर वह निर्भय कैसे है ?

**उत्तर**– सम्यग्दृष्टि अंतर में तो निर्भय ही है, बाह्य में भयप्रकृति में जुड़ान होने से अस्थिरता का किंचित् भय दृष्टिगोचर होता है, तथापि वह अंतरस्वरूप में तो निर्भय ही है, अतः सप्तभय से रहित निर्भय है।

**प्रश्न**– सीताजी और अंजनाजी वन में छोड़ते समय भयभीत तो थीं ही ?

**उत्तर**– यह तो पति का आधार छूटने पर अस्थिरता के कारण किंचित् बाह्य में रुदन दिखायी दिया था—तो भी अंदर में अपना आधार निजचैतन्यस्वभाव ही है, ऐसा जानकर रुदन आदि भय के भाव की कर्ता नहीं थीं; अपितु निर्भय और ज्ञाता ही थीं। प्लेग आदि किसी भयानक रोग का गाँव में प्रसंग हो तो किंचित् अस्थिरता व भय के कारण सम्यग्दृष्टि गाँव छोड़कर ग्रामेतर जाने आदि का उपाय भी करता है; परंतु वह अंदर में स्वभावदृष्टि के जोर की मुख्यता से निर्भय है तथा साथ ही ज्ञान है वह पर्याय के राग के कण-कण को जैसा है वैसा जानता है। इसी को अनेकांत का सच्चा ज्ञान कहते हैं।

**प्रश्न**– ज्ञानी भी तो युद्ध में शत्रु आदि मारते देखा जाता है ?

**उत्तर**– राम-लक्ष्मण, बलदेव-वासुदेव हैं और रावण प्रतिवासुदेव हैं। उसे लक्ष्मण मारते हैं। तत्पश्चात् रावण का दाह-संस्कार करने साथ जाते हैं। वहाँ रावण की पट्टरानी मंदोदरी से कहते हैं कि हे माता! हम लोग बलदेव-वासुदेव हैं, क्या करें ? दूसरा कोई उपाय नहीं था, होनहार हुए बिना रहती नहीं। माता! हमें क्षमा करना। राग-द्वेष की प्रवृत्ति तो हुई किंतु अंदर में उसका खेद है। यह हमारा काम नहीं, हम तो अंदर में रमनेवाले राम हैं।

**प्रश्न**– सम्यग्दृष्टि युद्ध में लड़ने के लिये क्यों जाता है ?

**उत्तर**– सम्यग्दृष्टि युद्ध के प्रसंग को और तत्संबंधी द्वेष के अंश को परज्ञेयरूप से जानता है, परंतु उसका कर्ता नहीं है; अतः निर्भय है।

**प्रश्न**– सम्यग्दृष्टि को भोग भोगते हुए भी कर्म बंध क्यों नहीं होता ?

**उत्तर**– सम्यग्दृष्टि को साता-असातारूप जितनी विषय-सामग्री है, वह सब अनिष्टरूप लगती

है। जैसे किसी को अशुभकर्म के उदय से रोग, शोक, दरिद्रता आदि होवे तो वह उनसे छुटकारा पाने का अथक प्रयत्न करता है; तथापि अशुभोदय के कारण छुटकारा मिलता नहीं–भोगना ही पड़ता है। उसी तरह सम्यग्दृष्टि ने पूर्व में साता–असातारूप कर्म बाँधा है और उसके उदय में अनेक प्रकारकी विषय–सामग्री होती है; उन सबको सम्यग्दृष्टि दु:खरूप अनुभव करता है, उन्हें छोड़ने का विशेष प्रयत्न भी करता है; किंतु जब तक क्षपकश्रेणी चढ़े नहीं तब तक उनका छूटना अशक्य होने से परवश होकर भोगता है, तथापि अंतरंग में अत्यंत विरक्ति होती है। यही कारण है कि भोगसामग्री को भोगते हुए भी सम्यग्दृष्टि को कर्मबंध नहीं होता।

**आवश्यक सूचनायें—**

(१) दि० जैन महासमिति, राजस्थान ने निर्णय लिया है कि महासमिति द्वारा निर्दिष्ट कार्यक्रम में से किसी भी योजना के वास्ते राजस्थान के प्रत्येक जिले [इस महासमिति द्वारा निर्धारित सीमानुसार] के लिये एक हजार एक रुपया महासमिति की इकाई समिति या संस्था सदस्य को दिया जायेगा। उपसमिति या संस्था के लिये आवश्यक होगा कि स्वयं भी उतना ही रुपया स्थानीय रूप से इकट्ठा करके उस योजना में लगावें। जो आवेदन–पत्र जिला संयोजक के मारफत दिनांक ३०–६–७८ तक प्राप्त हो जावेंगे, उन्हीं पर विचार किया जा सकेगा। एक ही जिले से कई प्रस्ताव आने पर जो प्रस्ताव इस समिति की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी होगा, उसकी ही स्वीकृति दी जावेगी। पत्र–व्यवहार का पता:—मंत्री, दि० जैन महासमिति, दि० जैन संस्कृत कॉलेज भवन, मनिहारों का रास्ता, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर ३०२००३।

(२) दिनांक २२ मई से १० जून, १९७८ तक उदयपुर (राजस्थान) में शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर का आयोजन है। आपके यहाँ से कितने व कौन–कौन भाई–बहिन पधारेंगे, इसकी सूचना जयपुर तथा उदयपुर (श्री उग्रसेनजी बंडी c/o बंडी गारमेंट्स, उदयपुर, राजस्थान) १० मई तक जरूर भिजवा देवें।

इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के तीन दिवस तक प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिलेगा।

(३) ग्रीष्मकालीन परीक्षायें १५ व १७ जुलाई, १९७८ को होंगी। प्रवेशफार्म भरकर भेजने की अंतिम तिथि ३० अप्रेल से १५ मई कर दी गयी है। अब १५ मई तक बिना लेट फीस के फार्म स्वीकार किये जा सकेंगे।

*— मंत्री, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड*

# समाचार दर्शन

## पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मार्मिक प्रवचन

**राजकोट :-** पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी दिनांक १०-४-७८ से २४-४-७८ तक यहाँ बिराजे। आपके दोनों समय आत्मा को स्पर्श करनेवाले गहनतम प्रवचन होते थे। तीव्रतम रुचि एवं अभ्यासी श्रोताओं की उपस्थिति में गुरुदेवश्री के प्रवचन राजकोट में विशेष सूक्ष्म एवं गंभीरता लिये होते हैं। उनके आध्यात्मिक प्रवचनों का भरपूर लाभ सहस्राधिक आत्मार्थियों ने लिया। रात्रिकालीन तत्त्वचर्चा में भी गंभीर तत्त्वचर्चा चलती थी। यहाँ से गुरुदेवश्री घाटकोपर (बंबई) पधार गये हैं। वहाँ वे १५ दिन ठहरेंगे। वहीं उनकी ८९वीं जन्म-जयंती भी विशेष उत्सवों के साथ मनायी जावेगी।

## जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़ में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाइये

विगत २५ वर्षों से संचालित इस छात्रावास में अध्ययन हेतु कक्षा ५ से १२ तक आर्ट्स, साइन्स और कॉमर्स विषयों के लिये जैन छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। यहाँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण भी दिया जाता है तथा पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ भी मिलता है। निवास व भोजन की अच्छी व्यवस्था है। यद्यपि प्रत्येक छात्र पर लगभग १२०) रुपये मासिक खर्च आता है तथापि पूरी फीस के रूप में ६०) रुपये तथा आधी फीसवालों से ३५) रुपये मासिक ही लिया जाता है। जो छात्र प्रवेश चाहते हों वे ५० पैसे भेजकर प्रवेश-पत्र व नियमावली मंगा लें तथा उसे भरकर वार्षिक परीक्षा की अंकसूची के साथ २०-५-७८ से पूर्व भेज दें। *—मंत्री, जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़, जिला भावनगर (गुजरात)*

## ऐतिहासिक जैन मेला एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

**फिरोजाबाद :-** आगरा, मैनपुरी, एटा तथा इटावा जिलों के सीमाकेंद्र पर स्थित इस औद्योगिक नगर में दिगंबर जैन मेला व प्रदर्शनी के साथ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन दिनांक २९ मार्च ७८ से ५ अप्रेल ७८ तक हुआ। दो सौ वर्ष से प्रचलित यह प्राचीन मेला अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों के साथ संपन्न हुआ, जिसमें आकर्षक झाँकियाँ, हैलीकॉप्टर द्वारा पुष्पवृष्टि, नाट्यसंगीत एवं स्थानीय विद्यालयों के बालक-बालिकाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रम बहुचर्चित रहे।

श्री वीतराग-विज्ञान शिक्षण शिविर इस मेले की सबसे विशिष्ट अनुपम एवं अत्यधिक उपयोगी देन रही, जिसमें देश के प्रख्यात मनीषी श्री पंडित बाबूभाई मेहता, विख्यात दार्शनिक एवं साहित्यकार डॉ० हुकमचंद भारिल्ल के ओजपूर्ण प्रवचन तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा का शैक्षणिक तत्त्वविवेचन अपार जनसमूह ने जिज्ञासा एवं रुचिपूर्वक सुना। इनके अतिरिक्त श्री राजमलजी पवैया भोपाल की कविताओं का तथा सुश्री शकुंतलाबेन ललितपुर एवं स्थानीय विद्वानों के भाषणों का लाभ भी समाज को मिला। इस अवसर पर भारी मात्रा में सत्साहित्य की बिक्री हुई तथा आत्मधर्म और जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। दिनांक २९-४-७८ को उद्घाटन के अवसर पर ध्वजारोहण पंडित बाबूभाई मेहता के कर-कमलों द्वारा संपन्न हुआ, फिरोजाबाद संदेश के मेला विशेषांक तथा जैन संगठन की स्मारिका का विमोचन श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने किया। *— पी० सी० जैन, फिरोजाबाद*

## पंडित श्री बाबूभाई मेहता द्वारा अभूतपूर्व प्रभावना

**विदिशा :-** दिनांक २० से २२ मार्च ७८ तक श्री महावीर जयंती के मंगल अवसर पर पंडित श्री बाबूभाई मेहता के पधारने से उनके आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ। महावीर जयंती के दिन प्रभातफेरी, जुलूस, कवि सम्मेलन आदि कार्यक्रम आयोजित किये गये।

श्री बाबूभाई मेहता ने श्री कुन्दकुन्द कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट में हो रहे कार्यों से समाज को अवगत कराया। विदिशा जैन समाज द्वारा तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को कई नवीन व्यक्तियों द्वारा और राशि देने के वचन मिले तथा दूसरी किश्त की काफी रकम आना प्रारंभ हो गयी है। *— ज्ञानचंद जैन*

**भोपाल :-** आदरणीय पंडित बाबूभाई मेहता महावीर जयंती पर विदिशा जाते हुए एक दिन के लिये यहाँ भी रुके और उनके विभिन्न मंदिरों में हुए तीन प्रवचनों का लाभ स्थानीय समाज को मिला।

**बड़ौत :-** दिनांक १६-४-७८ से २४-४-७८ तक श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवालों के सान्निध्य में श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान धूमधाम से संपन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित कन्नूभाई दाहोद, पंडित प्रकाशचंदजी

'हितैषी' दिल्ली, सेठ पदमचंदजी आगरा आदि विद्वान् भी पधारे। प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल विद्वानों के सारगर्भित प्रवचन होते थे तथा दोपहर में ३.३० से ४.३० तक तत्त्वचर्चा चलती थी। *— सुखवीर सिंह जैन, मंत्री*

## दिल्ली में 'वीतराग साहित्य सदन' की स्थापना

**दिल्ली :-** दिनांक २५ अप्रेल १९७८ को प्रातः ९ बजे मॉडल बस्ती में श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन के निवास्थान पर वीतराग साहित्य सदन का उद्घाटन सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता के कर-कमलों द्वारा श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर व पंडित कन्नूभाई दाहोद तथा अन्य गणमान्य महानुभावों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। यहाँ दिगम्बर जैन साहित्य लागत मूल्य पर उपलब्ध होगा। लाभ उठावें। *— रजनीश जैन*

संपर्क सूत्र - १२, न्यू कालोनी, मॉडल बस्ती, नई दिल्ली ११०००५, फोन : ५१५२५३

## डॉ० भारिल्ल द्वारा अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

**इंदौर :** स्थानीय मल्हारगंज के मंदिर में चैत्र शुक्ला ५ से १४ तक पर्यूषण पर्व मनाया गया। उक्त अवसर पर समाज के अति आग्रह पर १६-४-७८ से १८-४-७८ तक तीन दिन के लिये जयपुर से श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं श्री पंडित अभयकुमारजी पधारे। समयसार गाथा १४४ पर डॉ० भारिल्लजी के ८ मार्मिक प्रवचन हुए तथा पंडित अभयकुमारजी के प्रवचन मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए। बाकी के दिनों में स्थानीय विद्वानों में पंडित नाथूलालजी शास्त्री, श्री रमेशकुमारजी आदि के प्रवचनों का लाभ भी समाज को प्राप्त हुआ।

*— मनोहरलाल काला*

**जबलपुर :** महावीर जयंती के अवसर पर आयोजित अहिंसा सम्मेलन के अवसर पर मुख्यवक्ता के रूप में आमंत्रित श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के व्याख्यान दिनांक १९-४-७८ से २१-४-७८ तक तीन दिन समयसार गाथा १४४ पर लार्डगंज मंदिर के विशाल हॉल में हुए। रोटरी क्लब में भी भगवान महावीर के जीवन पर आपका मार्मिक व्याख्यान हुआ।

दिनांक २१-४-७८ को रात्रि में पच्चीस हजार से भी अधिक जनसमुदाय के मध्य अहिंसा पर आपका मार्मिक व्याख्यान हुआ, जिसे जैन-जैनेतर सभी ने मंत्र-मुग्ध होकर सराहा। अहिंसा सम्मेलन की अध्यक्षता माननीय श्रीमती जयश्री बनर्जी, मंत्री समाज कल्याण,

म०प्र० शासन ने की तथा डॉ० भारिल्ल के अतिरिक्त डॉ० रामजीसिंह संसद सदस्य दिल्ली, प्रो० रंजन सूरिदेव पटना, श्री सूरजचंद शाह उदयपुर एवं श्री निर्मलचंद जैन संसद सदस्य ने भी इस सभा को सम्बोधित किया। — *अभयकुमार जैन*

**सहडोल :** जबलपुर से महावीर जयंती का कार्यक्रम संपन्न कर शहडोल समाज के आग्रह पर डॉ० भारिल्ल एवं पंडित अभयकुमारजी यहाँ पधारे। यहाँ महिला-मंडल के विशाल हॉल में कलेक्टर महोदय की अध्यक्षता में डॉ० भारिल्ल एवं अभयकुमारजी के व्याख्यान हुए। कमिश्नर साहब सहित नगर के सभी प्रबुद्ध नागरिकों ने इसमें भाग लिया। दूसरे दिन मंदिरजी में दोनों विद्वानों के प्रवचन हुए। — *डॉ० राजेन्द्रकुमार बंसल*

**मैनपुरी :** स्थानीय समाज के अति आग्रह पर फिरोजाबाद से एक दिन के लिये डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल यहाँ पधारे। संयोग से उसी दिन विमानयात्रा भी थी। सभी समाज को उनके एक प्रवचन का लाभ प्राप्त हुआ। — **प्रकाशचंद सकारिया**

## महाविद्यालय के छात्रों को अपूर्व लाभ

**जयपुर :** श्री टोडरमल दिगम्बर जैन महाविद्यालय के कार्यक्रमों के अंतर्गत दिनांक २४-४-७८ को न्यायतीर्थ पंडित नरेंद्रकुमारजी भिसीकर सोलापुर पधारे। वे दिनांक ७-५-७८ तक रहेंगे। दैनिक प्रवचनों के अतिरिक्त वे महाविद्यालय के छात्रों को न्यायदीपिका, परीक्षामुख और आलापपद्धति पढ़ा रहे हैं। — *रमेशकुमार जैन*

## साहू श्रेयांसप्रसादजी द्वारा धर्मचक्र का अनावरण

**गुना :** दिनांक ८-७-७८ को एक भव्य समारोह में पांड्या सुकृत ट्रस्ट द्वारा निर्मित धर्मचक्र का अनावरण श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी द्वारा किया गया। समारोह की अध्यक्षता श्री मिश्रीलालजी गंगवाल भू० पू० मुख्यमंत्री मध्यभारत ने की। श्री लालचंद हीराचंद दोशी, अध्यक्ष, भा० दि० जैन तीर्थरक्षा कमेटी समारोह के मुख्य अतिथि थे। श्री राजकुमारसिंहजी कासलीवाल इंदौर, श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल इंदौर, श्री ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर शिरपुर, श्री हीरालालजी काला भावनगर, पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, पंडित नाथूलालजी शास्त्री इंदौर, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' दिल्ली आदि ने भी इस समारोह में भाग लिया। रात्रि में दि० जैन महासमिति की मध्यांचल समिति की बैठक भी आयोजित की गयी। — *विमलचंद जैन, गुना*

## श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का अधिवेशन

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर का वार्षिक अधिवेशन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर दिनांक १८-५-७८ को कुराबड (उदयपुर, राजस्थान) में होगा। यद्यपि सभी सदस्यों को व्यक्तिगत-पत्र दिये गये हैं फिर भी डाक आदि की गड़बड़ी के कारण पत्र न भी पहुँचे तो भी अवश्य पधारें। इसमें रुचि रखनेवाले अन्य लोग भी अवश्य पधारें। **— मंत्री, परीक्षा बोर्ड**

## युवा फैडरेशन का अधिवेशन

अ०भा० जैन युवा फैडरेशन का प्रथम वार्षिक अधिवेशन कुराबड़ (जिला उदयपुर-राज०) में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर १७ एवं १८ मई को आयोजित किया गया है। अधिवेशन में पधारनेवाले साथियों के लिये भोजन तथा आवास की व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। युवा साथी अधिक से अधिक संख्या में भाग लें। **— अखिल बंसल, अध्यक्ष**

## नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

समिति के निरीक्षक पंडित गोविंदप्रसादजी के उदयपुर के एरिये में घूमने से इस क्षेत्र में काफी जागृति हुई है। फलस्वरूप उदयपुर जिले के ओंगणा, पलासिया, कल्याणपुरा तथा कुंडा ग्रामों में नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खुलीं। उन्होंने सेमारी, टोकर आदि ग्रामों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण भी किया। सभी पाठशालाएँ व्यवस्थित पायी गयीं। इन सभी पाठशालाओं से ग्रीष्मकालीन परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये छात्रों के प्रवेश फार्म भरकर आ गये हैं।

यद्यपि इस क्षेत्र में तत्त्वप्रचार की बहुत आवश्यकता है, फिर भी लोगों में स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा, पूजा-पाठादि के लिये बड़ा उत्साह है। उदयपुर में लगनेवाले शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में बड़ी संख्या में मुमुक्षुबंधु सम्मिलित होंगे। ***— मंत्री, भा० वि० वि० पाठशाला समिति***

**नागपुर :** मद्रास पंच कल्याणक से लौटते समय श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवाले समाज के आमंत्रण पर यहाँ पधारे। यहाँ आपने श्री कोमलचंदजी जैन द्वारा आयोजित सिद्धचक्र विधान संपन्न कराया। १५ से २० मार्च तक विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये

तथा अंत में विशाल शोभायात्रा निकाली गयी। समयसार, मोक्षशास्त्र व छहढाला पर प्रतिदिन आपके प्रवचन होते थे। — *निर्मलकुमार जैन*

**करहल :** दिनांक ७-३-७८ से १४-३-७८ तक सेठ पदमचंदजी करहलवालों की ओर से श्री सिद्धचक्र मंडल विधान सानंद संपन्न हुआ। विधान कार्य की विधि पंडित धन्नालालजी ग्वालियर ने संपन्न करायी। इस अवसर पर श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा भी पधारे। उनके द्वारा प्रातः विधान की जयमाला पर तथा रात्रि को मोक्षमार्गप्रकाशक पर मार्मिक प्रवचन होते थे। दो दिवस के लिये सुश्री शकुंतलाबेन ललितपुर ने पधारकर महिलाओं को संबोधित किया। — *रमेशचंद, करहल*

**आगरा :** समाज के आग्रह पर ५ दिवस के लिये श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा पधारे। नाई की मंडी, नमक की मंडी, छीपीटोला, ताजगंज आदि अनेक स्थानों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। श्री नेमीचंदजी पाटनी तथा समाज के सहयोग से कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की राशि की किश्त एकत्रित की गयी। साथ ही २५ हजार से ऊपर की राशि के और वचन प्राप्त हुए। — *पदमचंद जैन, आगरा*

**बम्हौरी :** (छतरपुर-म.प्र.) में श्रीमान् ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा वालों के तत्त्वावधान में सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन अत्यंत उत्साह और धर्मप्रभावना के वातावरण में सविधि संपन्न हुआ। इस अवसर पर ब्रह्मचारीजी द्वारा प्रातः ४.३० से ५.३० बजे तक लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, शाम ६.३० से ७.३० तक छहढाला की कक्षायें चलती थीं तथा प्रातः १० से ११ बजे तक व सायं ८.३० से ९ तक प्रवचन होते थे। समाज ने भरपूर लाभ लिया। — *दिगंबर जैन समाज*

**सोरई ( ललितपुर-उ.प्र. ) :** समाज के आग्रह पर श्री ब्रह्मचारी बाबूलालजी के पधारने से समाज को चार दिन तक सुबह व शाम मोक्षमार्गप्रकाशक पर उनके प्रवचनों का लाभ मिला। आपने वीतराग-विज्ञान पाठशाला का निरीक्षण भी किया। — *दयाचंद जैन*

**कोटा :** दिनांक २१-४-७८ को भगवान महावीर का जन्म-जयंती महोत्सव दिगम्बर तथा श्वेतांबर दोनों संप्रदायों ने बड़ी धूमधाम से मनाया। राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन ने झंडारोहण तथा शिशु कल्याण केंद्र का उद्घाटन किया। इस अवसर पर

दिनांक २३-४-७८ तक विभिन्न कार्यक्रमों के साथ यह उत्सव मनाया गया। श्री दीनदयालजी सूद, अतिरिक्त जिला दंडनायक की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा हुई। सभा के प्रमुखवक्ता श्री युगलजी व वैद्य कपूरचंदजी थे। *— लालचंद जैन*

**शिवपुरी :** यहाँ श्री आजादकुमारजी जैन के संयोजकत्व में अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा स्थापित हुई। शाखा ने प्रतिदिन सामूहिक धार्मिक शिक्षण प्रारंभ करने का निश्चय किया। **— मंत्री**

**बड़ामलहरा ( छतरपुर-म.प्र. ) :** यहाँ महावीर जयंती के अवसर पर श्री दशरथ जैन, डॉ० हेमचंद जैन, पंडित वीरचंद जैन 'विशारद' आदि विद्वानों के भाषण हुए। स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्र-छात्राओं ने बालबोध पाठमालाओं के आधार पर संवाद प्रस्तुत किये, जिनकी समाज ने काफी सराहना की।

**जोवट ( झाबुआ - म.प्र. ) :** श्री दिगंबर जैन समाज के आमंत्रण पर श्री ब्रह्मचारी बाबूलालजी के पधारने से काफी धर्मप्रभावना हुई। इनके तत्त्वावधान में वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया। तीन दिन तक प्रतिदिन सुबह-शाम मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ पर आपके प्रवचन हुए। स्थानीय समाज के अतिरिक्त बाहर से पधारे सैकड़ों भाई-बहिनों ने लाभ लिया। **— चांदमल पहाड़िया**

**बड़वानी :** स्थानीय समाज द्वारा आयोजित सिद्धचक्र मंडल विधान के अवसर पर श्री ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठावाले पधारे। १६ से २१ अप्रेल तक प्रतिदिन प्रातः ९ से १० तथा सायं ८ से ९ बजे तक मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ पर आपके प्रवचन हुए। श्री हरसुख दिगंबर जैन छात्रावास बड़वानी के गृहपति श्री पंडित क्षेमंकरजी शास्त्री, न्यायतीर्थ ने वी०वि० विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर का पाठ्यक्रम अपने विद्यालय में प्रारंभ कराने का आश्वासन दिया।

## पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

### पाठकों के पत्र

**सोलापुर ( महाराष्ट्र ) से श्री कुलभूषण लोखंडे, संपादक, दिव्यध्वनि लिखते हैं :-**

आत्मधर्म के द्वारा सत्तत्त्व का प्रचार कर आपने उत्तम कार्य किया है। उत्तम क्षमादिक का वर्णन परंपरा में तो सब सुनाते आये हैं; पर तत्त्वदृष्टि से उसका वर्णन आज तक नहीं हुआ, वह आप दे रहे हैं, इसके लिये अभिनंदन।

इसके अतिरिक्त भी आत्मधर्म की प्रवृत्ति स्वोन्मुख है। दुनिया के वृत्तों पर बंधन रखना जरूरी है और परिणामों की विशुद्धता बढ़े—ऐसा ही समाचार इसमें प्रकाशित हो, ऐसी सर्वत्र अपेक्षा है। आप यह अपेक्षा पूरी तरह निभा रहे हैं, यह विशेष है।

**ललितपुर ( उ०प्र० ) से श्री नरेंद्रकुमारजी जैन लिखते हैं :-**

आत्मधर्म के संपादकीय लेख पढ़कर अत्यंत सुंदर भावनायें एवं विचारों का समन्वय मिलता है। जिन तार्किक बुद्धि से संपादकीय प्रकाशित होता है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है।

**बरेठ ( म०प्र० ) से श्री जवाहरलालजी जैन, अध्यापक लिखते हैं :-**

आत्मधर्म वास्तव में आत्मा की शुद्धता का ज्ञान कराता है। इसका नाम लेते ही हमें अपूर्व शांति का बोध होता है।

**नकुड़ ( उ०प्र० ) से श्री विजेंद्रकुमारजी 'संत' लिखते हैं :-**

आत्मधर्म पढ़ने की बड़ी उत्सुकता रहती है। इसके लेख आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होते हैं। अत: पढ़ने की अभिलाषा बनी रहती है।

**सोलापुर ( महाराष्ट्र ) से सौ० मीनाक्षी शहा लिखती हैं :-**

आत्मधर्म में उत्तमक्षमा-मार्दव आदि दशलक्षण धर्म पर प्रकाशित लेख सरल और महत्त्वपूर्ण होते हैं। आत्मधर्म के पढ़ने से स्वाध्याय में रुचि भी बढ़ी है।

**मौ ( म०प्र० ) से श्री चुन्नीलालजी जैन लिखते हैं :-**

आत्मधर्म ने हमारे जीवन में एक नया मोड़ दे दिया है। इसको पढ़कर अतीव आनंद प्राप्त होता है। प्रत्येक अंक का इंतजार रहता है।

**दुर्ग ( म०प्र० ) से श्री कुंदनमलजी सेठी लिखते हैं :-**

'मानव में चेतन बस रहा है, किंतु चेतन में मनुष्य नहीं बसता'—इसका लक्ष्य आत्मधर्म ने करया है। यह पत्रिका घर-घर में प्रकाश फैलावे ऐसी कामना है।

# प्रबंध संपादक की कलम से

**कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-**

(१) आत्मधर्म के जिन ग्राहकों का चंदा जून माह में समाप्त हो रहा है, हमने उनको मनिआर्डर भेजना प्रारंभ कर दिया है। अत: मनिआर्डर प्राप्त होते ही शीघ्र भरकर भेजने का कष्ट करें।

(२) अप्रेल माह में हमने २५०० मनिआर्डर भेजे थे, जिनमें से अभी तक लगभग १००० फार्म ही हमारे पास भरकर आये हैं, अत: अभी तक जिन सज्जनों ने मनिआर्डर फार्म भरकर नहीं भेजे हों, वे भेजने में कृपया शीघ्रता करें।

(३) भेंट में दी जानेवाली पुस्तक कुछ आजीवन ग्राहकों को भेजी गयी है; परंतु बिक्री में अधिक माँग आ रही है और पुस्तक की बाइंडिंग में भी समय लगता है—इस कारण पुस्तक भेजने में विलंब हो रहा है। सोनगढ़ से प्राप्त सूचना के अनुसार यह पुस्तक शनै: शनै: ग्राहकों को भेजी जावेगी, जो जुलाई तक सबके पास पहुँच सकेगी। अत: पत्र-व्यवहार करने का कष्ट न करें।

(४) मनिआर्डर भेजते समय फार्म की निचली स्लिप पर अपना नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें।

**पधारें!** **अवश्य पधारें!!**

## कुराबड़ में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

### पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का अभूतपूर्व आयोजन

**कुराबड़ ( जिला उदयपुर - राज० )** — यहाँ दिनांक १३-५-७८ से २०-५-७८ तक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का विशाल आयोजन किया गया है। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के १५ मई से २० मई तक आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा, साथ ही पंडित लालचंदभाई राजकोट, पंडित हिम्मतलाल जे० शाह सोनगढ़, पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, श्री युगलकिशोरजी कोटा, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित हिम्मतभाई जोबालिया सोनगढ़, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी विदिशा, पंडित नेमीचंदभाई रखियाल, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' दिल्ली, पंडित उत्तमचंदजी सिवनी, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर आदि विद्वानों के प्रवचनों का भी यथासंभव लाभ प्राप्त होगा।

इस अवसर पर राजस्थान के मुख्यमंत्री एवं स्वास्थ्य मंत्री तथा समाज के अनेक श्रेष्ठीगण भी पधार रहे हैं।

धर्मप्रेमी समाज से सानुरोध आग्रह है कि पधारकर अवश्य लाभ लें।

**— दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल, कुराबड़**

# आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी विद्यार्थियों के लिये जुलाई १९७७ से टोडरमल स्मारक भवन में ऐसी व्यवस्था प्रारंभ हो चुकी है कि जिसमें आत्मार्थी छात्र डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर जैन धर्म का सैद्धांतिक अध्ययन चारों अनुयोगों के माध्यम से करते हैं; साथ ही आवश्यक संस्कृत, व्याकरण, न्याय आदि विषयों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। अभी १३ आत्मार्थी छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

इस वर्ष सिर्फ १० छात्रों को नवीन प्रवेश देना है।

उक्त छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन शास्त्री एवं जैनदर्शन आचार्य परीक्षायें दिलायी जाती हैं, जो क्रमशः बी०ए० और एम०ए० के बराबर सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है।

शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के लिये वैकल्पिक विषय संस्कृत लेकर हायर सेकेण्डरी उत्तीर्ण होना आवश्यक है। जिन छात्रों का हायर सेकेण्डरी में वैकल्पिक विषय संस्कृत न होगा, उन्हें एक वर्ष का उपाध्याय कोर्स करना होगा। आवेदन करते समय अपनी शैक्षणिक योग्यता वैकल्पिक विषयों सहित अवश्य लिखें।

शास्त्री का कोर्स ३ वर्ष का होगा। उसके बाद २ वर्ष का कोर्स आचार्य परीक्षा का होगा।

आवास और भोजन की सुविधा निःशुल्क रहेगी। हायर सेकेण्डरी के बाद तीन वर्ष का शास्त्री कोर्स करनेवालों को ३५०) और उसके बाद दो वर्ष का आचार्य कोर्स करनेवालों को ५००) रुपये मासिक सर्विस दिलाये जाने की गारंटी दी जायेगी। पर उन्हें भी इस बात का बांड भरना होगा कि वे ५ वर्ष तक उक्त वेतनक्रम पर जहाँ संस्था कहे वहाँ सेवा करने को तत्पर रहेंगे।

आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने के लिये आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित खीमचंदभाई, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी वाराणसी, पंडित लालचंदभाई मोदी, पंडित बाबूभाई फतेहपुर, श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित रतनचंदजी विदिशा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा आदि का सान्निध्य प्राप्त होगा। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

वर्ष में एक या दो बार सोनगढ़ भी ले जाया जायेगा। सब कुछ मिलाकर लगभग एक माह का पूज्य स्वामीजी का सान्निध्य का लाभ मिलेगा।

अतः पूरा-पूरा आध्यात्मिक वातावरण मिलेगा।

अगला सत्र जुलाई १९७८ से प्रारंभ होगा। प्रवेशार्थी शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र प्रेषित करें। यदि उन्हें प्रवेश योग्य समझा गया तो फिर यथासमय साक्षात्कार के लिये बुलाया जायेगा।

**नेमीचंद पाटनी**

मंत्री

Registration. No. RJ-2712

# हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

| | |
|---|---|
| मोक्षशास्त्र | १२-०० |
| समयसार | १२-०० |
| समयसार पद्यानुवाद | ०-७० |
| समयसार कलश टीका | ६-०० |
| प्रवचनसार | १२-०० |
| पंचास्तिकाय | ७-५० |
| नियमसार | ५-५० |
| नियमसार पद्यानुवाद | ०-४० |
| अष्टपाहुड़ | १०-०० |
| समयसार नाटक | ७-५० |
| समयसार प्रवचन भाग १ | ६-०० |
| समयसार प्रवचन भाग २ | प्रेस में |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ५-०० |
| समयसार प्रवचन भाग ४ | ७-०० |
| आत्मावलोकन | ३-०० |
| श्रावकधर्म प्रकाश | ३-५० |
| द्रव्यसंग्रह | १-५० |
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ०-४० |
| प्रवचन परमागम | २-५० |
| धर्म की क्रिया | २-०० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १ | १-५० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २ | १-५० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३ | १-५० |
| तत्त्वज्ञान तरंगिणी | ५-०० |
| अलिंग-ग्रहण प्रवचन | १-६० |
| वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन) | १-०० |
| बालपोथी भाग १ | ०-६० |
| बालपोथी भाग २ | प्रेस में |
| ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | ४-०० |
| बालबोध पाठमाला भाग १ | ०-५० |
| बालबोध पाठमाला भाग २ | ०-७० |
| बालबोध पाठमाला भाग ३ | ०-७० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १ | ०-७० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २ | १-०० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३ | १-०० |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ | १-२५ |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ | १-२५ |
| जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २ | ३०-०० |

| | | |
|---|---|---|
| मोक्षमार्गप्रकाशक | | प्रेस में |
| पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व | | १०-०० |
| तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ | | ५-०० |
| " " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में) | | २-०० |
| मैं कौन हूँ? | | १-०० |
| तीर्थंकर भगवान महावीर | | ०-४० |
| वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर | | ०-२५ |
| अपने को पहचानिए | | ०-५० |
| अर्चना (पूजा संग्रह) | | ०-४० |
| मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर) | | ०-५० |
| पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य | | ०-६५ |
| कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य | | ०-३० |
| सत्तास्वरूप | | १-७० |
| सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १ | | प्रेस में |
| अनेकांत और स्याद्वाद | | ०-३५ |
| युगपुरुष श्री कानजीस्वामी | | १-०० |
| वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका | | ३-०० |
| सत्य की खोज (भाग १) | | २-०० |
| आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय | साधारण : | २-०० |
| | सजिल्द : | ३-०० |

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

*If undelivered please return to :*
**प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म**
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४